चतुर्दशख्यातिविवेक

लेखक

डॉ० मुरलीधर पाण्डेय

चतुर्दशख्यातिविवेक

लेखक
डॉ० मुरलीधर पाण्डेय
आचार्य, एम० ए०, वाचस्पति (डी० लिट्)
राष्ट्रपति सम्मानित

सम्पादिका
छन्दस्वती डॉ० शैलकुमारी मिश्र
वरिष्ठ प्रवक्ता
गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
इलाहाबाद

शैलेश प्रकाशन
१९९६ (२०५३ संवत्)

प्रकाशक

शैलेश मिश्र

शैलेश प्रकाशन

७०१/२/६७ डी, रामानन्द नगर

भरद्वाजपुरम्-इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

१९९६

मूल्य : ५० रु०

प्राप्ति स्थान

- ७०१/२/६७ डी, रामानन्द नगर,
  भरद्वाजपुरम्-इलाहाबाद-२११००६
- डॉ० मुरलीधर पाण्डेय
  बी० २/४७ तुलसी घाट मार्ग,
  भदैनी-वाराणसी-२२१००१

मुद्रक :

शाकुन्तल मुद्रणालय

३४, बलरामपुर हाउस

इलाहाबाद-२११००२

उपोद्घात

भारतीय सभी दर्शनों में मुख्यतया ज्ञान के दो भेद किये गये हैं— यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ज्ञान। इसी अयथार्थज्ञान को असम्यग्-ज्ञान, ख्याति, विभ्रम और भ्रान्ति कहते हैं। 'ख्या' प्रकथने धातु से निष्पन्न ख्याति शब्द का अर्थ कथन होता है। व्यवहार में इसका अर्थ प्रसिद्धि है। जैसे नैयायिकों में इनकी बड़ी ख्याति है इत्यादि। इसी प्रसिद्धि अर्थ को लेकर परम्परया ख्याति शब्द का अर्थ भ्रम भी हो गया। जैसे शुक्ति में रजत की ख्याति या रज्जू में सर्प की ख्याति। अर्थात् चाकचिक्य या अन्धकार आदि दोषों से शुक्ति में रजत की प्रसिद्धि हो गयी अथवा भ्रान्ति हो गयी। रज्जू में सर्प की प्रसिद्धि हो गवी अथवा रज्जू में सर्प की भ्रान्ति हो गयी। अयथार्थ ज्ञान अथवा भ्रान्ति का लक्षण विद्वानों ने यह किया है कि जिसमें जो प्रकार अर्थात् विशेषण न हो उसमें उस प्रकार या विशेषण के साथ विशेष्य का ज्ञान होता है। जैसे नैयायिकों ने कहा—'तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानम् अयथार्थम्'। इसको स्पष्ट करने के लिए ऐसा कहा जाता है—

व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्ना या विषयता तन्निरूपकत्वम् भ्रमत्वम्। अथवा स्वाधिकरणावृत्तिनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपकत्वम्।

इसका भाव यह है कि शुक्ति में शुक्तित्व प्रकार है और रजत में रजत्व प्रकार है, किन्तु शुक्ति में 'इदं रजतम्' इस भ्रमस्थलीय ज्ञान में रजतत्प्रकारक शुक्ति विशेष्यक जो ज्ञान हो रहा है वह अयथार्थज्ञान है या भ्रान्ति है।

इस भ्रान्ति को लेकर वात्स्यायन, प्रशस्तपाद, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, कुमारिलभट्ट, मण्डनमिश्र, भगवत्पादशंकराचार्य, वाचस्पतिमिश्र, जयन्तभट्ट, रामानुजाचार्य, अभिनव गुप्त, पार्थसारथिमिश्र, जयतीर्थ, भासर्वज्ञ, विज्ञानभिक्षु, नागेशभट्ट प्रभृति प्राचीन विद्वानों ने तथा शंकरचैतन्यभारती, सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, कवितार्किक चक्रवर्ती, श्री महादेव पाण्डेय, श्रीरघुनाथ शर्मा तथा श्रीरामानुजताताचार्य आनि आधुनिक विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों, भाष्यों, व्याख्यानों और लेखों में बहुत गहन विचार किया है।

यह ख्याति अनेक दार्शनिकों के मत से अनेक प्रकार की है। आचार्य मण्डनमिश्र (आठवीं शताब्दी) के समय में चार ख्यातियाँ प्रसिद्ध थीं। जिन पर विचार करने के लिए उन्होंने विभ्रमविवेक नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ के आदि में इन भ्रान्तियों का इस प्रकार निर्देश किया गया है—

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।
परीक्षकाणां विभ्रान्तौ विवादात्सा विविच्यते॥

इसी कारिका से मिलती हुई कारिका कुछ भेद के साथ श्रीमद्भागवत की वंशीधरी टीका में इस प्रकार है :—

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्याति ख्यातिरन्यथा।
तथानिर्वचनीयख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम्॥

श्रीमद्भागवत वं० टी० ११।१६।२७

आचार्य मण्डनमिश्र के बाद अभिनवगुप्त, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, विज्ञानभिक्षु, नागेश्वरभट्ट आदि ने कुछ और ख्यातियों की उद्भावना और स्थापना की। भासर्वज्ञ श्लोकवार्तिकटीकाकार तथा पार्थसारथिमिश्र ने अपनी व्याख्याओं एवं टीकाओं में कुछ और ख्यातियों की सूचना दी। जिससे अब ख्यातियों की संख्या पाँच की जगह चौदह तक पहुँच गयी है।

इन सभी चौदह ख्यातियों पर अभी तक एकत्र सुव्यवस्थित विचार नहीं किया गया है। यदि एकत्र सुव्यवस्थित विचार किया गया भी हो तो देखने में ऐसा ग्रन्थ अभी आया नहीं है। हिन्दी में तो इस प्रकार के ग्रन्थ का सर्वथा अभाव ही है, जिसमें चौदह प्रकार की ख्यातियों के स्वरूप दिये गये हों और उनपर विश्लेषणात्मक परिशीलन भी दिया गया हो। वे चौदह ख्यातियाँ इस प्रकार हैं—

१. आत्मख्याति (विज्ञानवादी-योगाचार बौद्ध), २. असत् ख्याति (शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध), ३. अख्याति (प्राभाकार मीमांसक), ४. अन्यथा ख्याति (न्यायवैशेषिक), ५. अनिर्वचनीय ख्याति (अद्वैत-शाङ्कर वेदान्ती), ६. अपूर्णख्याति (कश्मीर शैवागम), ७. यथार्थ-ख्याति (विशिष्टाद्वैती रामानुजप्रभृति), ८. सदसतख्याति (सांख्ययोग एवं वैयाकरण), ९. अभिनवान्यथाख्याति (माध्व सम्प्रदाय), १०. सत्ख्याति (वैष्णव सम्प्रदाय), ११. प्रसिद्धार्थख्याति (चार्वाक), १२. अलौकिकार्थ ख्याति (भट्ट उम्बेक), १३. स्मृतिप्रमोषख्याति (भट्ट उम्बेक), १४. निर्विषयख्याति (श्री वेदान्त देशिक) आदि।

प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी ख्यातियों के स्वरूप यथासंभव तत्तद् आचार्यों के वचनों के साथ दिखलाने का प्रयास किया गया है। साथ ही प्रत्येक ख्याति के स्वरूप निरूपण के साथ उनका परिशीलन भी लिखा गया है। परिशीलन में तत्तत् ख्यातिगत युक्तायुक्तत्व पर

विचार भी किया गया है। इसलिए उपरिलिखित प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानों के ग्रन्थों से और निबन्धों से प्रर्याप्त सहायता प्राप्त की है। अतः इन प्राक्तनपथिकृत् महर्षि वात्स्यायन, श्रीशङ्कराचार्य, श्री मण्डनमिश्र, श्री जयन्तभट्ट, श्री प्रभाकर, श्री रामानुजाचार्य, श्री अभिनवगुप्त, श्री वल्लभाचार्य, श्री माध्वाचार्य, श्री वेदान्तदेशिक प्रभृति, आचार्य नागार्जुन, असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, उमास्वाति (स्वामी), प्रभृति, श्री नागेशभट्ट, श्री विज्ञानभिक्षु, श्री शङ्करचैतन्यभारती, श्री वी० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, कवितार्किक चक्रवर्ती श्री महादेव पाण्डेय, श्री रघुनाथ शास्त्री एवं श्री रामानुज-ताताचार्य, प्रभृति आचार्यों के प्रति अपनी प्रणामाञ्जलि तथा कृतज्ञता समर्पित एवं प्रकट करता हूँ। यतः इन सबों के विचार सम्बल से ही इस ग्रँन्थ का स्वरूप बन सका है तथा इसमें प्रामाणिकता आ सकी है। अन्यथा ये दोनों तथ्य संभव नहीं थे।

शारीरिक दुर्बलता एवं जरावस्था के कारण सभी पक्षों को उद्धरणों के साथ सही ढंग से लिखने में कठिनाई हो रही थी। इस कार्य में अपनी तनया डॉ० (श्रीमती) शैलकुमारी मिश्र, वरिष्ठ प्रवक्ता, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद ने अपने गृहकार्य एवं विद्यापीठीय कार्य के साथ बड़े श्रम एवं मनोयोगपूर्वक ग्रन्थ को इस रूप में ले आने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। इनका अपना अध्ययन क्षेत्र यद्यपि दर्शन नहीं है। इनके मुख्य अध्ययन का विषय साहित्य (छन्द शास्त्र) एवं शिक्षाशास्त्र है, तथापि प्रभुप्रदत्त प्रतिभा से दार्शनिक ग्रन्थियों को सुलझाने में भी सफलता प्राप्त की, साथ ही सुदर्शन प्रेस कॉपी तथा प्रूफ संशोधन आदि कार्यों का भी सम्यक् निर्वाह किया। इन प्रशस्त कार्यों के लिए इनके निरवधिक सुख एवं अभ्युदय के लिए मेरा शुभाशीष है। मेरे गुरुपुत्र अनुज, प्राच्य-प्रतीच्य उभय दर्शन निष्णात डॉ० श्री किशोरनाथ झा, प्रवाचक

गंगानाथझा के० सं० विद्यापीठ, इलाहाबाद ने बड़ी रुचि से इस ग्रन्थ को आद्यन्त अवलोकन कर दृष्टिपूत किया है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना धर्म समझता हूँ। आयुष्मान् नप्ता शैलेश मिश्र ने प्रकाशित किया है अतः इन्हें चिरायुष्य एवं आदर्श वैदुष्य की प्राप्ति का शुभाशीः अपने आप स्वतः मेरे द्वारा प्राप्त हो रहा है। शाकुन्तल मुद्रणालय के प्रबन्धक श्री उपेन्द्रनाथ त्रिपाठी को भी हार्दिक धन्यवाद से अलंकृत कर रहा हूँ जिन्होंने श्रम एवं सावधानी से इस ग्रन्थ के कलेवर को मनोहर रूप प्रदान किया है।

अब गुणैक पक्षपाती विद्वानों से प्रार्थना है कि इस लघुकाय पुस्तक को अपनाकर मेरा श्रम सफल करने की कृपा करेगें।

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः।
वचो विन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम्॥

(जयन्त भट्ट)

अन्त में माता अन्नपूर्णा और श्री विश्वनाथ जी के चरणों में उनकी वस्तु उन्हीं को समर्पित करता हूँ।

इति शम्।

विजयादशमी
वि० सं० २०५३
सन् १९९६

विदुषां वशंवदः
मुरलीधर पाण्डेय
बी० २/४७ भदैनी, वाराणसी

विषय-सूची

संकेताक्षर-सूची

न्या० भा०	—	न्याय भाष्य
प्र० प०	—	प्रकरण पञ्चिका
ता० टी०	—	तात्पर्य टीका
वै० सू०	—	वैशेषिक सूत्र
अ० सि०	—	अद्वैत सिद्धि
त० प्र०	—	तत्त्व प्रदीपिका
वै० सि० म०	—	वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा
वै० सि० ल० म०	—	वैयाकरण सिद्धान्त लघु मञ्जूषा
ई० प्र० वि०	—	ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
शा० भा०	—	शाबरभाष्य
ब्र० सू०	—	ब्रह्मसूत्र
जै० सू०	—	जैमिनी सूत्र
वै० सि० ल० म०	—	वैयाकरण सिद्धान्त लघु मञ्जूषा
बौ० वा० नि०	—	बौद्धार्थ वाच्यत्व निरूपण
न्या० परि०	—	न्याय परिशुद्धि
बृ० आ० उप०	—	बृहदारण्यक उपनिषद
सां० सू०	—	सांख्यसूत्र
पा० यो० सू०	—	पातञ्जलयोगसूत्र०

चतुर्दशख्यातिविवेकः

।। श्रीगणेशायनमः ।।

ख्याति शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—प्रसिद्धि, कथन, आनन्दोल्लास एवं भ्रम। प्रथम तथा द्वितीय अर्थ तो प्रसिद्ध ही है। तृतीय अर्थ श्री जगद्धरभट्ट की स्तुतिकुसुमाञ्जलि के अन्त में कविवंशावलि में प्राप्त है—"सञ्जातो जगदेकनाथस्तुतिभिर्वाग्देवि ते विभ्रमः।" यहाँ पर टीका में विभ्रमः महान् आनन्दोल्लासः ऐसा लिखा है। पर भारतीय दर्शनशास्त्रों में चतुर्थ अर्थ भ्रम या भ्रान्ति परिगृहीत है। इसके लिए विभ्रम, असम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। दर्शनशास्त्र में ज्ञान का बड़ा महत्त्व है। यह ज्ञान मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है—एक सम्यग्ज्ञान दूसरा असम्यग्ज्ञान। श्री मण्डन मिश्रजी ने अपने ग्रन्थ—विभ्रमविवेक की ३७वीं कारिका में कहा है—"अवोचन् निपुणं मन्या विभ्रमं सम्यगग्रहम्।" इस सम्यग्-अग्रह (अज्ञान) को अप्रमा तथा अयथार्थ ज्ञान कहा गया है तथा सम्यग् ग्रह (ज्ञान) प्रमा या यथार्थ ज्ञान माना जाता है। सभी ज्ञान प्रमा नहीं हो सकते। यदि सभी ज्ञान प्रमा कहे जाय तो शास्त्रों का परस्पर विचारक्षेत्र ही समाप्त हो जायेगा। जैसे वादी का ज्ञान भी प्रमा है और प्रतिवादी का ज्ञान भी प्रमा है तब वादी तथा प्रतिवादी दोनों के ज्ञान होने पर प्रतिवादी की भी विजय कही जायगी। यदि दोनों का ज्ञान अप्रमा है तो वाद ही व्यर्थ है। प्रतिवादी के समान

वादी की भी पराजय है। इसलिए माना जाता है कि कुछ ज्ञान प्रमा है और कुछ ज्ञान अप्रमा। शास्त्रकारों ने इस अप्रमा के अनेक लक्षण किये हैं। भगवान् शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के उपोद्घात भाष्य में कहा है कि अप्रमा के अनेक लक्षण होने पर भी अतद् में तद्बुद्धि को अध्यास कहते हैं और इसी अध्यास को अप्रमा कहा जाता है। अन्य में अन्य प्रकार का ज्ञान होना ही अप्रमा है। इसी अप्रमा ज्ञान को ख्याति भी कहते हैं। अर्थात् अन्य में अन्य प्रकारक प्रसिद्धि होना या प्रकथन करना। जैसे शुक्ति में रजत का भान। व्याकरण के अनुसार 'ख्या' का अर्थ प्रकथन होता है। धातु पाठ में लिखा है 'ख्या प्रकथने' अर्थात् केवलं ख्यायते न तु अर्थ क्रिया कारित्वेन प्रतीयते। जिसमें केवल ख्याति या प्रकथन मात्र हो तथा जिस पदार्थ में क्रिया करने का अभाव हो। जैसे सीप में रजत की ख्याति प्रकथन मात्र हो सकती है। सीप में प्रतीयमान रजत से रजत का कार्य नहीं हो सकता है।

इस ख्याति के विषय में विभिन्न दार्शनिकों ने अनेक प्रकार से विचार किया है। नैयायिक कहते हैं कि अन्य में अन्य प्रकारक ख्याति होने से यह अप्रमा अन्यथा ख्याति है। भाट्ट मीमांसक तथा जैनी भी इसी अन्यथा ख्याति के पक्षपाती हैं। प्राभाकर मीमांसक कहते हैं कि अन्यथा ख्याति की सामग्री भेदाज्ञान है। और यह भेदाज्ञान एक प्रकार से किसी प्रकार की ख्याति का नहीं होना है। अतः अख्याति में पर्यवसित हो रहा है। इसलिए प्राभाकर मीमांसक अख्यातिपक्ष का समर्थन करते हैं। क्षणिक विज्ञानवादी (योगाचार) बौद्ध क्षणिकविज्ञान को ही बाह्य वस्तु के आकार में प्रतीति मानते हैं। ये विज्ञान को आत्मा कहते हैं। भ्रमस्थल में विज्ञानरूपी आत्मा की ही प्रतीति बाह्य वस्त्वाकार रूप में होती है। अतः विज्ञानवादी बौद्ध आत्मख्याति मानते हैं। शून्यवादी माध्यमिक

बौद्धों के मत में भ्रमस्थल में असत् की प्रतीति होती है। अतः इनके मत में असत्ख्याति मानी जाती है। श्रीमण्डनमिश्र के समय तक ये चार ही ख्यातियाँ प्रसिद्ध थीं। श्रीमण्डनमिश्र अपने विभ्रम विवेक[1] के प्रारम्भ में लिखते हैं—

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।
परीक्षकाणां विभ्रान्तौ विवादात्सा विविच्यते ॥

इनके अतिरिक्त श्रीशंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य प्रभृति ने और भी ख्यातियां मानी हैं। जैसे श्रीशंकर की अनिर्वचनीयख्याति, श्रीरामानुजाचार्य की यथार्थख्याति, माध्वों की अभिनवान्यथाख्याति, न्यायभूषणकार की प्रसिद्धार्थख्याति, भट्टोम्बेक की अलौकिकार्थख्याति, सांख्ययोग तथा व्याकरण की सदसत्ख्याति और प्रत्यभिज्ञादर्शन की अपूर्णख्याति आदि हैं।

१. आत्मख्याति (ज्ञानख्याति)

आत्मख्याति बौद्ध विज्ञानवादी, सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक का मत है। बौद्ध दार्शनिकों के चार सम्प्रदाय हैं—माध्यमिक, योगाचार या विज्ञानवादी, सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक। सत्ता के विषय में इनका परस्पर मतभेद है और इसी मतभेद के कारण भ्रमस्थल में इनके ख्याति भेद हैं। सत्ता के विषय में इनके मतों का संक्षेप में परिचय इस श्लोक से मिलता है—

मुख्यो माध्यमिकोविवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्।
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्ध्येति सौत्रान्तिकः।
प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भासते।

---

१. दी जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास १६३२।

माध्यमिक कहते हैं कि शून्यतत्त्व या अनिर्वचनीयतत्त्व का ही विवर्त (अतात्त्विक अन्यथा भाव) ये सब हैं। इसलिए संसार भी असत्य है और निर्वाण भी असत्य है। योगाचार वाले विज्ञानवादी कहते हैं कि अन्तःस्थ ज्ञान का ही विवर्त ये सब हैं। अतः संसार असत्य है और निर्वाण सत्य है। सौत्रान्तिक विज्ञानवादी के समीप हैं और कहते हैं कि बाह्यार्थ की सत्ता है और वे बाह्यार्थ अनुमेय हैं—'चित्ताकारेणैव बाह्यपदार्था अनुमीयन्ते'। सौत्रान्तिक मत में बाह्यार्थ की सत्ता होने से संसार सत्य है और निर्वाण असत्य है। वैभाषिक मत में बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों विषयों की सत्ता मानी जाती है तथा बाह्यार्थ प्रत्यक्ष होता है अनुमेय नहीं। इनका मुख्य आधार ग्रन्थ अभिधर्म ज्ञानप्रस्थान शास्त्र, अभिधर्म विभाषा शास्त्र तथा वसुबन्धु का अभिधर्म कोष है। इनमें धर्म शब्द का अर्थ भूत (बाहरी) तथा चित्त (भीतरी) सूक्ष्म तत्त्वों से है। यह सम्पूर्ण संसार इन्हीं भूत तथा चित्तरूपी धर्मों के आघात-प्रतिघात से परिलक्षित होता है। अतः बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों की ही सत्ता है। इनके मत में संसार सत्य है तथा निर्वाण भी सत्य है।

इन चारों बौद्ध सम्प्रदायों में उक्त प्रकार से सत्ता के विषय में मतभेद होने से ख्याति में भी भेद हुआ है। माध्यमिक मत में कोई भी वस्तु सत् नहीं है। अतः असत् ख्याति मानी जाती है। वैभाषिक के मत में बाह्यार्थ सत्ता मानी जाती है। अन्तःस्थ विषय ही बाह्य विषय रूप से प्रत्यक्ष होते हैं इसलिए वैभाषिक मत में आत्मख्याति मानी गयी। सौत्रान्तिक मत में भी अन्तःस्थ विषय का बाह्य विषय रूप में अनुमेय मानने से आत्मख्याति ही हुई। विज्ञानवादी के मत में तो स्पष्ट ही है कि अन्तःस्थ ज्ञान ही बाह्याकारेण प्रतीत होते हैं इसलिए आत्मख्याति है। यहाँ आत्मा का अर्थ ज्ञान माना गया है। इसलिए इस आत्मख्याति को ज्ञानख्याति भी कहते हैं। आत्मख्याति

मानने में लाघव है। शुक्ति में रजत का भ्रम इदं रजतम् इस रूप में होता है। अग्रिम क्षण में कारणवश नेदं रजतम् (यह रजत नहीं है) ऐसा बोध होता है। यहाँ पर रजतधर्मी (विशेष्य) है और इदम् धर्म (विशेषण) है। नेदं रजतम् इस बाधक ज्ञान में केवल इदन्ता धर्म का बाध होता है, रजतरूप धर्मी का बाध नहीं होता। इन तीनों मतों में अन्त:स्थ विज्ञान ही बाह्यार्थ रूप में प्रतीत होता है। अन्तर इतना ही है कि विज्ञानवादी बाह्य वस्तु को अध्यस्त रूप से मानता है, सौत्रान्तिक बाह्यार्थ को अनुमेय कहता है और वैभाषिक बाह्यार्थ को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करता है। इस प्रकार इन तीनों मतों में इदं रजतम् इस भ्रम के अनन्तर नेदं रजतम् इस बाध की प्रतीति में केवल पुरोवर्ती इदन्त्व रूपी धर्म का ही बाध होता है, रजत रूपी धर्मी का नहीं। अत: धर्म-धर्मी उभय के बाध की अपेक्षा केवल धर्मी के बाध होने से लाघव है।

इन तीनों मतों में आरोप्य ज्ञानाकार है। अत: आरोप्यांश में एक रूपता हैं। किन्तु अधिष्ठानांश में मतभेद है। सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक मत में बाह्यार्थ के सत् होंने से उसी बाह्यार्थ में ज्ञानाकार का आरोप होता है। अतः सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक के यहाँ आरोप्य का अधिष्ठान बाह्य वस्तु है। विज्ञानवादी के यहाँ बाह्यार्थ सत् नहीं है। अत: अनादि अविद्या की वासना से आरोपित अलीक बाह्यवस्तु ही आरोप्य का अधिष्ठान माना जाता है। ब्रह्मसूत्र के अध्यासभाष्य की भामती में वाचस्पति मिश्र ने कहा है—

सौत्रान्त्रिकनये तावद् बाह्यमस्ति सत्। तत्र ज्ञानाकारस्यारोपः। विज्ञानवादिनामपि यद्यपि न बाह्यमस्ति वस्तु सत् तथाप्यनाद्य-विद्यावासनारोपितमलीकं बाह्यम्। तत्र ज्ञानाकारस्यारोपः।

इसकी कल्पतरु परिमल व्याख्या में अप्पयदीक्षित ने भी यही कहा है—

'बाह्यास्तित्ववादिनोः सौत्रान्तिकवैभाषिकयोः सत् शुक्तिका-शकलादिकमधिष्ठानम्। तन्नास्तित्ववादिनो योगाचारस्य तु अविद्या कल्पितं तदधिष्ठानम्'। किन्तु बाह्यार्थवादी वैभाषिक बौद्ध और बाह्यार्थानुमेयवादी सौत्रान्तिक बौद्ध इनके मत में बाह्य पदार्थ होने से वैशेषिक नैयायिकों के समान ये भी अन्यथा ख्यातिवादी हैं ऐसा श्री नागेशभट्ट ने अपने वैयाकरण सिद्धान्त लघुमञ्जूषा में कहा है— यद्यप्यन्यथाख्यातिः सौत्रान्तिकस्य बाह्यशुक्त्यादौ ज्ञानधर्मरजता-देरध्यासः इति तेनाङ्गीकारात्। तथापि हट्टस्थरजतादेरारोप इति-रीत्या वैशेषिकैः स्वकीयैः सादृता। तदुभयमपि न। तदसत्त्वेन तद्रूपस्य सन्निकर्षाभावेन असन्नभासते सन्निकर्षाभावात्—इति स्व सिद्धान्तव्याघातात् (बौद्धार्थवाच्यत्व निरूपणे)।

आत्मख्याति का परिशीलन :

इस आत्मख्याति या ज्ञानख्याति में कई आपत्तियां उठती हैं। जिनका विवेचन न्यायतात्पर्यटीका तथा न्यायमञ्जरी आदि ग्रन्थों में किया गया है। सीपमें 'इदं रजतम्' इस भ्रमात्मक ज्ञान में रजत विज्ञानाकार है यह किस कारण से कहा जा रहा है? विज्ञानाकार रजत है इस कथन में अनुभव कारण है या अनुमान प्रमाण कारण है? यदि प्रथम पक्ष मानें कि अनुभव कारण है तब प्रश्न उठता है कि कौन अनुभव कारण है? इदं रजतम् यह अनुभव अथवा नेदं रजतम् यह वाधक अनुभव। क्योंकि अनुभव तो दोनों हैं। इनमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है। क्योंकि इदम् रजतम्—यह रजत है यह अनुभव बाहरी दृश्यमान रजत की ही प्रतीति कराता है अन्तःस्थ रजत की नहीं। यदि अन्तःस्थ रजत की प्रतीति मानी जाय तो मै रजत हूँ अथवा मैं रजतवाला हूँ ऐसा अनुभव स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि विज्ञानवादी के मत में अहम्—मैं अर्थ ज्ञान का ही है। इसी प्रकार तात्पर्यटीका में भी रजत के विज्ञानाकारत्व का खण्डन किया गया हैं—

पुरोवर्तित्वनिषेधादर्थात् ज्ञानाकारतासिद्धिरिति चेत् तन्निषेधो वणिग्वीथ्यादावुपलब्धस्य रजतस्य व्यवस्थापने हेतुः। आन्तरत्वं त्वस्यानुपलब्धचरं कुतस्त्यम्।[1]

अर्थात् पुरोवर्तित्व के निषेध से अर्थतः ज्ञानाकारता की सिद्धि होती है—ऐसा मानने पर ज्ञानाकारता का निषेध ही बाजार में उपलब्ध चाँदी के व्यवस्थापन का हेतु होता है। आनन्रता तो अनुपलब्ध का किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

२. असत्ख्याति

यह असत्ख्याति माध्यमिक बौद्धों का मत है। इस मत का प्रधान ग्रन्थ नागार्जुन प्रणीत मध्यमककारिका है। जिसमें सभी पदार्थों का खण्डन किया गया है। शून्यता का प्रतिपादन किया गया है। अन्त में शून्यता की सत्ता का भी खण्डन किया गया है। शून्यता को परमार्थ तथा सत्य नहीं माना गया है। इस मत में सब कुछ असत् है। इसलिए ख्याति भी असत् की होती है और ख्याति स्वयं असत् है।

इदं रजतम्—यह रजत है इसका बाधक ज्ञान इदं न रजतम् (यह चाँदी नहीं है) यह रजत की असत्ता को प्रकट करता है। अब यहाँ शंका होती है कि जो वस्तु असत् है वह ज्ञान का विषय कैसे बनेगी? इसका समाधान यह करते हैं कि विषय कारण नहीं है जो असत् में रहीं रह सकता किन्तु विषय उसे कहते हैं—"स्वकारणाधीनः ज्ञानगतः सामर्थ्यातिशयः विषयत्वम्" अर्थात् जो स्वीयकारण के अधीन तथा ज्ञान में रहने वाला अतिशय सामर्थ्य है वही विषय है। यह विषय सत् तथा असत् दोनों का प्रत्यक्ष कराता है। इस प्रकार इस मत में असत् विषय का ज्ञान हो भ्रम है।

---

१. (मिथिला इन्स्टीच्यूट प्रकाशन पृ० १६०)।

असत्ख्याति का परिशीलन :

असत्ख्याति पक्ष में कुछ आपत्तियां उठती हैं। जैसे क्या भ्रमात्मक ज्ञान असत् है ? जिसका सद्रूप से ग्रहण हो रहा है और इसी कारण असद् विषयक होने से असत्ख्याति कही जाती है। अथवा सद्रूप ही भ्रमात्मक ज्ञान इतर सद्रूप से गृहीत हो रहा है। और एक सद् का इतर सद्रूप न रहने के कारण असद् होकर असद् विषयकख्याति या असत्ख्याति कही जाती है।

इन दोनों पक्षों में प्रथम पक्ष नहीं बन सकता। क्योंकि 'इदं रजतम्' इस भ्रम ज्ञान में यदि असद् रजत विषय है तब रजतार्थी की प्रवृत्ति कैसे होगी ? यदि पुनः शुक्ति ही रजत रूप से असत् होकर रजताकाररूप से शुक्ति को विषय करता है तब कहना पड़ेगा कि यह एक प्रकार से अन्यथा ख्याति ही हुई।

यदि कहा जाय कि विज्ञानाकार रजत ही 'इदं रजतम्' इस भ्रमात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करता है इसलिए 'इदं रजतं' यह ज्ञान रजत के ज्ञानाकार में प्रमाण नहीं है किन्तु 'नेदं रजतम्' (यह रजत नहीं है) यह ज्ञान ही रजत में इदन्ता का निषेध करता है और ज्ञानाकार को प्राप्त करता है, यह भी ठीक नहीं क्योंकि 'नेदं रजतम्' यह ज्ञान सामने दृश्यमान इदं पदार्थ में रजत का भेद बोधित करता है, रजत की ज्ञानाकारता को बोधित नहीं करता।

यदि 'न इदं रजतम्' को उलट कर 'रजतं न इदम्' ऐसा अन्वय करके रजत नहीं है सामने वाला पदार्थ ऐसा बोध करें तो रजत बहिःस्थ बाजार वाला सिद्ध होगा, रजत का ज्ञान करना सिद्ध नहीं होगा। इसी बात को तात्पर्य टीका में इस प्रकार लिखा है—

"तथाहि ज्ञानाकारत्वं रजतादेरनुभवाद् व्यवस्थाप्यते अनुमानाद्वा। अनुभवोऽपि रजतप्रत्ययो वा''''चक्षुषी निमील्य वैज्ञानिक पक्षपातं परित्यज्यालोचयतु भवान्। किं पुरोवर्तिद्रव्याकारता मात्रं

प्रतिषेधति रजतस्याहोस्वित् ज्ञानाकारतामप्यस्योपदर्शयति बाधकप्रत्ययः। तत्र ज्ञानाकारतोपदर्शनव्यापारं बाधकप्रत्ययस्य ब्रुवाणः श्लाघनीयप्रज्ञो देवानांप्रियः। पुरोवर्तित्वनिषेधादर्थाज्ज्ञानाकारतासिद्धिरिति चेत् ? न, तन्निषेधो वणिक्वीथ्यादावुपलब्धस्य रजतस्य व्यवस्थापने हेतुः आन्तरं त्वनुपलब्धचरं कुतस्त्यम्। न चानुमानमत्र प्रभवतीति चतुर्थे निवेदयिष्यते।" (न्याय वा० ता० टीका १।१।२।१)। इसलिए रजत रूप से अभाव असत्ख्याति का विषय नहीं बन सकता।

यदि द्वितीय पक्ष मानें कि सत् ही इतर सद् रूप से गृहीत होता है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि शुक्ति ही रजतरूप से न रहकर (असती) भी रजताकार को प्राप्त कर शुक्ति को विषय बनाती है। तब तो यह अन्यथाख्याति ही कही जायगी। क्योंकि इतर का इतरधर्मवत्त्वेन भान हो तो अन्यथाख्याति है।

असत्ख्याति शब्द का अर्थ भी विचारणीय है। यदि असत्ख्याति का अर्थ यह किया जाय कि सर्वत्र अविद्यमान अर्थ की प्रतीति, तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि सर्वत्र अविद्यमान खपुष्प एवं कूर्मक्षीर की प्रतीति नहीं होती।

यदि असत्ख्याति का अर्थ यह किया जाय कि देशान्तर में विद्यमान का देशान्तर में प्रतीत होना। तब तो प्रकारान्तर से अन्यथाख्याति ही इसे मानना पड़ेगा। इसी बात को जयन्तभट्ट ने न्यायमञ्जरी में कहा है—

नात्यन्तमसतोऽर्थस्य सामर्थ्यमवकल्पते।
व्यवहारधुरं वोढुमीयतीमनुपप्लुताम् ॥

३. अख्याति, विवेकाख्याति, विवेकाग्रहख्याति

यह मत गुरु प्रभाकरमतानुयायियों का तथा जैन दर्शन का है सिद्धान्त यह है कि इन्द्रियों का सामर्थ्य यथार्थ विज्ञान के जनन में है,

मिथ्या ज्ञान के जनन में शक्ति नहीं है। अन्धकाराधिक्य चाकचिक्य आदि दोष इन्द्रियों के अनुकूल कार्य करने की शक्ति के प्रतिबन्धक मात्र होते हैं। दोष इन्द्रियों की अनुकूल कार्य शक्ति के विपरीत कार्य जनन के आधायक नहीं होते। जैसे दूषित कूटबीज से वटांकुर का जन्म नहीं होता। उसी प्रकार चाकचिक्यादि दोषों के द्वारा शुक्ति में रजत की दर्शन शक्ति या रजत की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

दूसरी बात यह है कि प्राभाकर तथा भाट्ट दोनों ज्ञान को सत्य तथा प्रमा मानते हैं। ये कहते हैं कि सभी ज्ञान यथार्थ ही होते हैं। ज्ञान को अयथार्थ मानने पर सभी ज्ञानों में अनवस्था हो जायेगी। इसीलिए मीमांसकों ने ज्ञान का स्वतः प्रामाण्य भी स्वीकार किया है। प्राभाकर मत में भ्रम नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। भ्रमस्थल में ज्ञान का अभाव माना जाता है।

इस प्रकार सभी ज्ञान के यथार्थ होने पर शुक्ति में रजत का भ्रम न होकर आपणस्थ रजत का स्मरण माना जाता है। 'इदं रजतम्' इस भ्रमस्थल में इदम् अंश प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। नेत्र इदम् पदार्थ के अस्तित्व की सूचना देकर विरत हो जाता है। रजत अंश का प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि रजत की सत्ता वहाँ नहीं है। इसलिए आपण में देखे गये रजत की स्मृति मानी जाती है। यहाँ पर दोनों ही सत्य है। किन्तु इदम् पदार्थ तथा स्मृत रजत पदार्थ का परस्पर भेदग्रह नहीं होने से, दोनों प्रकार के ज्ञानों के एक साथ मिल कर होने से, एवं दोनों के पार्थक्य के विवेक न होने से भ्रम हो जाता है। इसीलिए अख्याति का दूसरा नाम विवेकाग्रह भी है। प्रकरण-पञ्चिका में उल्लेख है—

रजतमिदमिति नैकं ज्ञानम्, किन्तु द्वे एते विज्ञाने। तत्र रजत-मितिस्मरणम् तस्याननुभवरूपत्वान्न प्रामाण्यप्रसङ्गः। इदमिदं

विज्ञानमनुभवरूपं प्रमाणमिष्यत एव। भ्रान्तिरूपता चात्र रजतज्ञानस्य स्मरणरूपस्यैव ग्रहणव्यवहारप्रवर्तकतया व्यवहारकाले विसंवादकत्वात्। (प्र० प० पृ० ४३)

बृहती में भी यही बात कही गयी है—"ननु शुक्तिकायां रजतज्ञानं स्मरामि—इति प्रमोषात् स्मृतिज्ञानमुक्तम्। युक्तं रजतादिषु। रजतमिति ज्ञानं स्मृतिः। तत्र स्मृतित्वस्य विप्रमोषः अभिमानाभावः।"[1] (मीमांसादर्शन अ० १ पा० १ बृहती)।

इस अख्याति पक्ष का समर्थन नयविवेक में तथा तन्त्ररहस्य में विशेषरूप से किया गया है। इस मत में उपर्युक्त प्रत्यक्ष स्मरणात्मक ज्ञान को भ्रम इसलिए कहा जाता है कि यह बाधित व्यवहार का हेतु है यहाँ विषय बाधित नहीं है। प्राभाकर मत में भ्रम का लक्षण है—"बाधितव्यवहारहेतुत्वमेव भ्रमत्वं न तु बाधितविषयकत्वम्।"

अख्याति पक्ष का परिशीलन :

शुक्ति में इदं रजतम् इस प्रकार के भ्रम होने पर रजतार्थी की रजत द्रव्य के लिए प्रवृत्ति होती है। यह प्रवृत्ति प्रत्यक्षात्मक स्मरणात्मक दो ज्ञानों को लेकर दोनों में भेद के अज्ञान (अग्रह) होने से नहीं होती क्योंकि रजतप्रातिपदिक का ही स्मरण होगा और रजत प्रातिपदिक का स्मरण प्रवृत्ति नहीं करा सकता। इदंकारास्पद विषयक इच्छा होने पर प्रवृत्ति होती है। इदंकारास्पदविषयक इच्छा होने के लिए इदंकारास्पद में रजतत्व विषयक ज्ञान होना आवश्यक है। इदंकारास्पद में रजतत्वेन ज्ञान के न होने पर भी यदि प्रवृत्ति मानेंगे तो इदंकारास्पद में रजतत्वेन जिस व्यक्ति को ज्ञान नहीं है उसकी निवृत्ति पुनः कैसे होगी? यतः इदंकारास्पद में

---

१ सम्पादक शे० कृ० रामनाथ शास्त्री १९३४।

रजतत्वेन ज्ञान न होने पर निवृत्ति मानी जाती है, वह नहीं हो सकेगी। अतः इदंकारास्पद में रजतत्वप्रकारक ज्ञान अपेक्षित है स्मृति नहीं। इसी तथ्य को तात्पर्य टीका में श्री वाचस्पति मिश्र ने इस प्रकार कहा है—

सोऽयमुभयतो भेदाभेदग्रहसारूप्यात् प्रवृत्तिनिवृत्तिभ्यां युगपदाकृष्यमाणः प्रतिपत्ताकष्टादशामावेशितः प्रज्ञाशालिभिरतिव्याख्यया। (ता० टी० १।१।२।१)

दूसरा दोष यह कि प्रवृत्ति में इष्टसाधनता का ज्ञान होना आवश्यक है। अख्याति (विवेकाग्रह) पक्ष में इदंकारास्पद में रजतत्वप्रकारक ज्ञान के बिना इष्टसाधनता ज्ञान नहीं हो सकता और इष्टसाधनताज्ञान के बिना प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अख्यातिवादी भ्रमस्थल में पुरोवर्ती इदम् में रजत् के भेद के अज्ञान होने से और रजत विषयक इष्टसाधनता की स्मृति होने पर इदंकारास्पद रजत में भी इष्टसाधनता का अनुमान करते हैं तब प्रवृत्ति मानते हैं।

तीसरा दोष यह भी है कि अख्याति पक्ष में रजत का प्रतिभान नहीं माना जाता किन्तु रजत की स्मृति मानी जाती है। ऐसी स्थिति में यह रजतभ्रम निरालम्बन हो रहा है। क्योंकि शुक्ति में रजत का प्रतिभान अथवा अप्रतिभान दोनों नहीं बन पाते। यदि शुक्ति में रजत का प्रतिभान है तब अभ्रान्ति कही जायगी, यदि शुक्ति में रजत का प्रतिभान नहीं है तब रजतार्थी की प्रवृत्ति नहीं बनेगी। इसलिए अख्यातिवादी को रजतादि विपर्यय ज्ञान को स्वप्न के विपर्यय ज्ञान के समान मानना पड़ेगा। स्वप्न के विपर्यय ज्ञान के समान मानने पर निरालम्बन ज्ञान कहा जायगा। निरालम्बन भ्रम को मानने पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भ्रम में कुछ भी भासित नहीं होता। तब यह शंका होती है कि शुक्ति में रजत ज्ञान हुआ, मरीचि में जल ज्ञान हुआ ऐसा व्यवहार क्यों किया जाता है ?

चौथा दोष यह भी है कि यदि अख्याति को विवेकाग्रह कहते हैं तब सुषुप्ति तथा भ्रान्ति में क्या भेद होगा ? भ्रान्ति तथा सुषुप्ति दोनों समान हो जायगें। इस तथ्य को आचार्य मण्डनमिश्र ने इस प्रकार कहा है—

अवोचन्निपुणं मन्या विभ्रमं सम्यगग्रहम्।
न किञ्चिद्भासते चेति विरुद्धमिव दृश्यते।
भासत्त्वे[ते]रूपवत्त्वेन नासत् संविद् विरोधकम्।
अन्यस्याप्यन्यथाख्यातिरतएव न युज्यते ॥

(विभ्रमविवेक, ३७, ३८)

यहाँ यह भी विचारणीय है कि बाधज्ञान होने पर रजत स्मृति का बाध होता है या रजत इस भासमान का बाध होता है। अनुभव यही है कि रजतभान का बाध होता है रजत स्मरण का नहीं।

कुमारिलभट्ट के अनुयायी मीमांसक विपरीताख्याति मानते हैं। जो नैयायिकों की अन्यथा ख्याति के समान है।

४. अन्यथाख्याति

यह ख्याति न्यायवैशेषिकों की है। इस सिद्धान्त में भ्रम विषयी-मूलक होता है, विषयमूलक नहीं। तत्त्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति मानी जाती है। पदार्थ अपने स्थान पर सही रूप में रहता है। इनका कहना है कि शुक्ति में रजत के धर्म का स्मरण हो जाता है, इसका कारण इन्द्रियदोष है। स्मृति होने पर पूर्व दृष्ट रजत की अनुभूति के बल से पूर्वदृष्ट रजत का अलौकिक प्रत्यक्ष हो जाता है। इस अलौकिक प्रत्यक्ष से देखे हुए रजत के गुणों का आरोप पुरोवर्ती शुक्ति में हो जाता है। इस प्रकार अन्य के गुणों का अन्य में प्रतीत होने से अन्यथाख्याति कहते हैं। इस मत में विभ्रम का लक्षण किया जाता है—'सन्मात्रविषयकं विशेष्या-

वृत्तिप्रकारकं व्यधिकरणप्रकारकं ज्ञानमन्यथाख्यातिः।" इसको समझाने के लिए न्यायसूत्र के वार्तिक में मृगमरीचिका का उदाहरण दिया गया है। उद्योतकर लिखते हैं—

यत् तदुदकादिज्ञानमुपजायते मरीचिषु स्पन्दमानेषु न तत्रार्थो व्यभिचरति। न हि ते न मरीचयो न वा स्पन्दन्ते। किन्तु ज्ञानं व्यभिचरति। अतस्मिन् तदिति भावादिति ज्ञानस्य व्यभिचारः नार्थस्य। (न्याय० १।१।४)

इसी तथ्य को न्यायभाष्य में वात्स्यायन ने स्थाणु पुरुष के उदाहरण से इस प्रकार समझाया है—

तत्त्वज्ञानेन मिथ्योपलब्धिर्निवर्त्यते, नार्थः स्थाणुपुरुषसामान्यलक्षणः, अर्थात् यथा प्रतिबोधे या ज्ञानवृत्तिस्तया स्वप्नविषयाभिमानो निवर्त्यते नार्थो विषयसामान्यलक्षणः तथा मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णाकानामपि या बुद्धयः अतस्मिन् तत् इति व्यवसायाः तत्रापि अनेनैव कल्पेन मिथ्योपलब्धिविनाशः तत्त्वज्ञानात्, नार्थप्रतिषेध इति।

(न्या० भाष्य ४।२।३५)

प्राभाकर मत की अपेक्षा इस मत में यह लाघव है कि संवादी तथा विसंवादी दोनों प्रकार की प्रवृत्ति में समानता है। जो कार्यकारणभाव लौकिक सन्निकर्ष आदि सामग्री वास्तविक रजतस्थल में प्रत्यक्ष के लिए हैं वे ही कार्यकारणभाव विसंवादी रजतभ्रमस्थल में भी हैं। प्राभाकरमत में भ्रमस्थल में विसंवादी प्रवृत्ति में भेदाग्रहरूप कारण मानना पड़ता है जो गौरवाधायक होता है।

शुक्ति में रजतार्थी की प्रवृत्ति देखकर रजतत्वप्रकारकप्रवृत्तिमद् रूप विशिष्ट प्रतीति का अनुमान किया जा सकता है। भासमान रजत का आलम्बन शुक्ति है, यदि भासमान रजत का आलम्बन शुक्ति न हो तो रजतार्थी पुरोवर्ती शुक्ति को उठाने के लिए हाथ क्यों बढ़ायेगा।

प्राभाकरों का यह कहना कि दुष्ट कारण स्वाभाविककार्य जनन के सामर्थ्य के प्रतिरोधक हैं यह ठीक है। किन्तु कभी कभी दुष्ट कारण कार्यान्तर के उत्पादन में शक्तिशाली भी होते हैं। जैसे जले हुए वेतसी बीज कदली के उत्पादक होते हैं अथवा जैसे भस्मक रोग में दुष्ट जाठरानल वहुत अन्न को पचाने लगता है।

प्राभाकरों का यह कहना भी ठीक नहीं है कि यदि ज्ञान को मिथ्या मानेंगे तो व्यभिचार दोष होने से प्रमाणों में अनास्था होने लगेगी। क्योंकि अव्यभिचार को ज्ञानप्रामाण्यसाधक कहीं भी नहीं माना गया है। इसमें तीन प्रकार के विकल्प हो सकते हैं—क्या अव्यभिचार प्रमाण है? क्या अव्यभिचार प्रमाण हेतु है? अथवा क्या अव्यभिचार प्रामाण्य का व्यापक है? जिससे व्यभिचार को ज्ञान का अप्रामाण्य सिद्ध किया जाय। ये तीनों विकल्प सही नहीं हो सकते। क्योंकि यदि अव्यभिचार प्रामाण्य है तो व्यभिचार अप्रामाण्य यह मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं है।

यदि ज्ञान का अव्यभिचार प्रामाण्य का हेतु है तो व्यभिचार अप्रामाण्य का हेतु होगा। अव यदि अव्यभिचार को प्रामाण्य का हेतु मानते हैं तो अव्यभिचार भिन्न व्यभिचार से प्रामाण्य की उत्पत्ति न होने से अप्रामाण्य स्वतः सिद्ध है। यदि अव्यभिचार को प्रामाण्य का व्यापक मानते हैं तो व्यापक का अभाव व्याप्याभाव का व्याप्य होता है। इस नियम से व्यभिचार जो है वह प्रामाण्य व्यापक अव्यभिचार का अभाव रूप पड़ेगा और वह अप्रमाण्थरूप व्याप्याभाव कहा जायगा, जो ठीक नहीं है। क्योंकि धूम और वह्नि में अव्यभिचरित ज्ञान होने पर भी कदाचित् प्रतिबन्धक बलात् कदाचित् वह्निज्ञान के न होने पर अप्रामाण्यापत्ति होगी। इसी प्रकार कभी कदाचित् श्वेत में कृष्ण एवं कृष्ण में श्वेत ज्ञान होने पर व्यभिचरित होने पर भी रूपबोधजनन में चाक्षुष ज्ञान का प्रामाण्य माना जाता

है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान को व्यभिचारी मान लेने पर विश्वास के लिए कोई आधार नहीं रहेगा।

वस्तुतः ज्ञान अपने कार्य के लिए अव्यभिचार की अपेक्षा नहीं करता। ज्ञान होते ही विषय का प्रकाशन हो जाता है। अव्यभिचार की अपेक्षा नहीं होती। ज्ञान अपने ज्ञान के लिए अव्यभिचार ज्ञान की अपेक्षा करेगा तो उस प्रामाण्य ज्ञान के लिए दूसरे अव्यभिचार की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार अनवस्था दोष होगा। इसलिए यदि स्वतः प्रामाण्य मानते हैं तो प्रथम ज्ञान में भी प्रामाण्य आ जाता है।

न्यायसूत्रकार ने न्यायसूत्र के आरम्भ में ही इस अन्यथाख्याति का समर्थन किया है। मिथ्या ज्ञान को संसार का हेतु कहा है। वह मिथ्या ज्ञान अनात्मा में आत्मज्ञान, दुःख में सुख का ज्ञान है। भाष्यकार वात्स्यायन ने अतस्मिन् तद् ज्ञान को मिथ्या कह कर अन्यथा ख्याति का पोषण किया है। इनके मत में अन्य में अन्य तादात्म्यक ज्ञान भ्रम है। अतस्मिन् तद् ज्ञान विपर्यय है। इसी विपर्यय ज्ञान का नामान्तर अन्यथा ख्याति है। तात्पर्यटीका में कहा है—

संप्रति संदिहानो विपर्ययस्वरूपं पृच्छति। कः पुनरयं विपर्यय इति। परीक्षकाणां विप्रतिपत्तेः संशयः। केचित्तु स्वाकारंवाह्यत्व-विषयं ज्ञानं विपर्यय इत्याचक्षते। अन्येऽसद्विषयं ज्ञानं····अन्यथा-ख्यातिरिति वृद्धाः। (ता० टी० १।१।२)

वैशेषिकों ने भी इसी ख्याति को माना है। वैशेषिक सूत्र— इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या (वै० सू० ९।२।१०) तथा तद्दुष्टज्ञानं (वै० सू० ९।२।९११) के अविद्या शब्द तथा दुष्टज्ञान

शब्द के द्वारा भ्रमात्मक ज्ञान लिया गया है। प्रशस्तपाद ने अपने भाष्य में विपर्यय का यही लक्षण किया है—

अतस्मिंस्तदिति प्रत्ययो विपर्यय इति।

अन्यथाख्याति का परिशीलन :

व्याकरण के अनुसार अन्य शब्द से प्रकार अर्थ में थाल् प्रत्यय (प्रकारवचनेथाल्० पा० सू०) करने पर अन्यथा शब्द बनता है। विग्रह होता है—अन्यस्य प्रकारः अन्यथा। इसका अर्थ है दूसरे के (अन्य वस्तु के) धर्मों (गुणों) का दूसरी (अन्य) वस्तु में प्रतीत होना। इस प्रकार यह भ्रमात्मक ज्ञान अलौकिक सन्निकर्ष ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्ति से होता है। क्योंकि रजत के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं है। जैसे 'सुरभि चन्दनम्' इस स्थल में लौकिक इन्द्रिय सन्निकर्ष न होने पर अलौकिक ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति से सौरभ तथा चन्दन का प्रत्यक्षज्ञान किया जाता है।

यहाँ पर विचार करना है कि भ्रमस्थल में सर्वत्र इन्द्रियसंन्निकर्ष नहीं होता ऐसा नहीं है। 'इमे रङ्गरजते' इस भ्रमस्थल में दोनों भ्रमविषयों में लौकिकसन्निकर्ष है। दूसरी बात यह है कि अलौकिक ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति मानने की आवश्यकता नहीं है। 'सुरभि चन्दनम्' यहाँ पर 'चन्दनं पश्यामि, सौरभं स्मरामि' इस प्रकार प्रत्यक्षात्मक तथा स्मरणात्मक दो ज्ञान मानने से काम चल जायगा, तथा ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति मानने पर अनुमान प्रमाण का सर्वथा उच्छेद हो जायगा। अन्यथा ख्यातिवाद में 'इदं रजतम्' इस भ्रम-स्थल में 'रजतत्वाभाववति रजतत्वप्रकारक' ज्ञान भासित होने से व्यधिकरणप्रकारक ज्ञान माना जाता है। इसको रजतत्वप्रतियोगिक और शुक्त्यनुयोगिक वैशिष्ट्य भासित हो रहा है ऐसा मानते है।

किन्तु ऐसा कहीं देखा नहीं गया है। अतः यह असत् है और असत् का सन्निकर्ष होता नहीं। इसलिए अन्यथाख्याति बन नहीं पाती। अन्यथावादी का कहना है कि अन्यत्र स्थित सत् वस्तु के धर्म का अन्यत्र आरोप करना अन्यथाख्याति है यह ठीक नहीं है। यतः किसी धूर्त ने शशश्रृङ्ग की बड़ी महिमा गायी और कोई उसे पाने के लिए अरण्य में गया। वहाँ किसी वन्य का श्रृङ्ग या कोई काष्ठ विशेष उस व्यक्ति को प्राप्त हो गया, वह उसे शशश्रृङ्ग समझ उठा लिया और रख लिया। अब यहाँ भ्रम कैसे बनेगा? यतः यहाँ शशश्रृङ्ग-रूप सत् वस्तु के धर्म का काष्ठ विशेष में आरोप नहीं है।

इस प्रकार अन्यथाख्यातिवाद की स्थापना नहीं हो पाती। श्रीनागेशभट्ट ने वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा के बोद्धार्थवाच्यत्व-निरूपण में इस वाद की स्वीकृति को नैयायिक वैशेषिकों के लिए स्वसिद्धान्तव्याघात कहा है—

"यद्यप्यन्यथाख्यातिः सौत्रान्तिकस्य बाह्यशुक्त्यादौ ज्ञानधर्मरजतादेर-ध्यास इति तेनाङ्गीकारात्। तथापि हट्टस्थरजतादेरारोपइतिरात्या वैशेषिकैः समादृता। तदुभयमपि न। तत्र तदसत्वेन तद्रूपस्य सन्निकर्षाभावेन—असन्न भासते सन्निकर्षाभावादिति स्वसिद्धान्त व्याघातात्।"

५. अनिर्वचनीयख्याति

यह ख्याति अद्वैतवेदान्तियों की है। इसके मत में एक ही ब्रह्म अद्वितीय सत्य है और ब्रह्मातिरिक्त सभी कुछ अध्यस्त है, कल्पित है तथा भ्रान्ति है। श्रुतियाँ कहती हैं—"नासदासीन्नो सदासीदित्यादि श्रुतयोऽप्यनिर्वाच्यत्वे प्रमाणम्।" (अद्वैतसिद्धि प्र० श्रुत्यर्थानुपपत्ति) इन श्रुतियों के अनुरोध के कारण तथा दूसरी ख्याति प्रक्रियाओं

में दोष होने के कारण अद्वैतवेदान्ती अनिर्वचनीयख्याति मानते हैं। "तस्माद् अनिर्वचनीयख्यातिरेवप्रमाणसंभवात्।" (अ० सि०) इस मत के अनुसार 'इदं रजतम्' इस भ्रमात्मक ज्ञान में अविद्या के द्वारा अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति मानी जाती है। 'तच्चानिर्वचनीयमज्ञानोपादानकं तत्त्वज्ञानेन नाश्यं च' (अ० सि०, प्र० आविद्यकरजतोत्पत्तिः) इसके आगे कहा है कि "तस्मादधिष्ठानांशे अन्तःकरणवृत्तिः अध्यस्तांशे चाविद्यावृत्तिः। तस्यां च तादात्म्यस्य भानात् नान्यथाख्यातिमतप्रवेशः।" (अ० सि०, प्र० भ्रमस्य वृत्तिः)। अनिर्वचनीय का अर्थ है किसी वस्तु का सत् रूप से तथा असत् रूप से निर्वचन न होना। अनिर्वचनीय का अर्थ यह नहीं है कि सत् तथा असत् से विलक्षण वस्तु का होना जैसे 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञान में रजत् सत् नहीं है, क्योंकि यदि रजत् सत् हो तो उत्तरकाल में वाध नहीं हो सकता। यदि भ्रमज्ञान में रजत् को असत् मानें तो रजत् आकाश कुसुम आदि के समान प्रतीति का विषय नहीं हो सकता और दूसरी बात यह है कि यदि रजत असत् है, तब असत् वस्तु से इन्द्रिय सन्निकर्ष हो नहीं सकता। इन्द्रिय सन्निकर्ष न होने से रजत का प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। अद्वैत वेदान्ती के मत में ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति नहीं मानी जाती। 'इदं रजतम्' भ्रमस्थल में दो ज्ञान माने नहीं जा सकते। दो ज्ञान मानने पर इदंकारास्पद में रजतार्थी की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। नेत्रगतदोष या चाकचिक्य आदि दोषों के कारण अन्य में अन्य प्रकारक ज्ञान मानने पर दुष्टनेत्र वाले व्यक्ति को सर्वदर्शी हो जाना चाहिए। चित्सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका में अनिर्वचनीयत्वनिरूपण के उत्तरपक्ष में कहा है—"विवादाध्यासिते सदसत्त्वे एकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिनीधर्मत्वाद् रूपरसवदिति अनिर्धारित धर्मिनिष्ठतया सामान्यतः सिद्धस्य सदसद्वैलक्षण्यस्य केवलव्यतिरेकिणो रजतधर्मिनिष्ठतयोपसंहारादप्रसिद्धविशेषणत्वाभावात्। न चानिर्वचनीयत्वे 'सदिदं रजतमिति भ्रमानुभवविरोधः, अधिष्ठा-

नेदंतासंसर्गवत्तत्सत्तासंसर्गस्यापि अनिचर्वनीयस्यैव भ्रमेऽनुभवात्। अपि च ब्रह्मणीव पारमार्थिकसत्तायाः प्रपञ्च इव च व्यावहारिकसत्ताया अभावेऽपि प्रातिभासिकसत्तास्वीकारेण सदिदं रजतमित्यनुभवो न विरुद्धयते। न च नेदं रजतमित्यसत्त्वानुभवविरोधः अर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणसत्त्वस्यैव तत्र निषिध्यमानत्वात्।

(त० प्र०, प्र० परि०)

प्रत्यक्ष तथा स्मृति दोनों के द्वारा प्रत्यक्षात्मक एवं स्मृत्यात्मक दोनों ज्ञान मिलकर भ्रम होता है, यह नहीं कह सकते, क्योंकि पीतशंख कभी नहीं देखा गया है। अतः 'पीतः शंखः' भ्रमज्ञान में पीत शंख का स्मरण नहीं हो सकता।

इसलिए औपनिषद अद्वैतवेदान्ती भ्रमस्थल 'इदं रजतम्' इत्यादि में अनिर्वचनीय रजत आदि की उत्पत्ति मानते हैं। अनिर्वचनीय का अर्थ है—निर्वचनायोग्य = जिसका निर्वचन न किया जा सके। अर्थात् सदसदन्यतररूपेण अनिर्वचनीयत्वम्। अर्थात् जिसका सद्रूपेण अथवा असद्रूपेण निर्वचन संभव न हो। जैसे शुक्ति में रजत न तो सत् और न तो असत् है। यतः यदि सत् हो तो उत्तरकाल में उसका बाध नहीं होता और यदि रजत असत् होता तो भासित ही नहीं होता। क्योंकि असत् का भास असंभव है। यहाँ बाध के बाद यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि मिथ्या रजत भासित हुआ था, यह प्रत्यक्ष ही भ्रम के अनिर्वचनीयत्व में प्रमाण है।

भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय रजत आदि की उत्पत्ति मानी जाती है। अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति होने से चाक्षुष सन्निकर्ष बन जाता है। श्रुति भी कहती है—"न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति। अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते।" (वृ० आ० उ० ४।३।१४)

जैसे पारमार्थिक सत्य ब्रह्म, अविद्या-माया के द्वारा व्यावहारिक घट-पटादि के रूप में प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार शुक्तिरूप व्यावहारिक सत्य में चाकचिक्यादि दोष से नया रजत उत्पन्न होता है और शुक्ति में रजत भासित होने लगता है। जिस प्रकार जल में बुद्बुद का उत्पन्न और नष्ट होना प्रतीत होता है, उस प्रकार शुक्ति में रजत की उत्पत्ति और विनाश की प्रतीति नहीं होती। यत: रजत और इदमंश में तादात्म्य ज्ञान होता है, जो प्रतिबन्धक बन जाता है, जिससे रजत की उत्पत्ति की प्रतीति नहीं होने पाती और इसी प्रकार भ्रम के समय में तत्त्व ज्ञानरूप नाशक के न होने से, भ्रम के नाश के अभाव होने से रजत के नाश की प्रतीति भी नहीं होती। वस्तुतस्तु समान सत्ता वाले भाव एवं अभाव का विरोध होता है। यहाँ व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक सत्ता वाले दो पदार्थों में कोई विरोध ही नहीं है। अत: जलबुद्बुद के समान उत्पत्ति एवं विनाश की प्रतीति नहीं होती। इन दोनों में एक जगह प्रातिभासिक प्रतीति है और दूसरी जगह व्यावहारिक प्रतीति है।

अनिर्वचनीय ख्याति का परिशीलन :

अद्वैत वेदान्ती भ्रमस्थल में अविद्या के द्वारा अनिर्वचनीय रजत आदि की उत्पत्ति मानते हैं। इनका कहना है कि प्रत्यक्ष के लिए इन्द्रिय सन्निकर्ष कारक माना गया है। यह इन्द्रिय सन्निकर्ष बनाने के लिए इदंकारास्पद में अविद्या के द्वारा अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति माननी चाहिए। इस पर आपत्ति यह है कि प्रत्यक्ष के लिए वस्तु को पहले होना चाहिए और बाद में इन्द्रिय सन्निकर्ष होना चाहिए। इसलिए भ्रमस्थल में पहले रजत उत्पन्न होना चाहिए, बाद में सन्निकर्ष और तव प्रत्यक्ष होना चाहिए। किन्तु प्रतिभास-स्थल में होता यह है कि प्रतिभासकाल में ही प्रातिभासिक पदार्थों

की उत्पत्ति मानते हैं। इस प्रकार प्रातिभासिक पदार्थ का ज्ञान इन्द्रिय सन्निकर्षजन्य नहीं बन पाता। यदि यह कहा जाय कि साक्षिभास्य स्थल में इन्द्रिय सन्निकर्ष के बिना भी जैसे प्रत्यक्ष माना जाता है, वैसे ही भ्रमस्थल में भी अन्धकार आदि दोषों के कारण शुक्ति में रजत का प्रत्यक्ष होगा, तो यह कथन भी ठीक नहीं है। क्योंकि दोष के कारण ही रजत का प्रत्यक्ष होता है, ऐसा मानने पर अपूर्व रजत की उत्पत्ति, उत्पत्ति के कारण और रजत प्रतीति के कारण आदि जो अनेक कल्पनायें की गयी हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगी। अतः अनिर्वचनीयरजत की उत्पत्ति मानने की अपेक्षा दोष विशेषरूप कारणों से रजतादि का प्रत्यक्ष होता है, ऐसा मानने में लाघव है। अनिर्वचनीय ख्याति के विरोध में ऐसा कहा जाता है। तात्पर्य टीका में श्रीवाचस्पति मिश्र ने कहा है कि अनिर्वचनीय ख्याति ठीक नहीं है। यतः मिथ्याज्ञान समय में रजत है और बाधकाल में रजत नहीं है इस प्रकार की व्याखया करने पर रजतज्ञान निर्वचनीय हो गया, अनिर्वचनीय नहीं रहा और दूसरी बात यह भी है कि भ्रान्ति सादृश्यमूलक ही होती है। जैसे रज्जू में सर्प की भ्रान्ति होती है, क्योंकि रज्जू भी दण्डाकार होता है और सर्प भी। दोनों में समानता है। इसी प्रकार शुक्ति में रजत की भ्रान्ति होती है। क्योंकि, शुक्ति का चाकचिक्य और रजत का चाकचिक्य समान है। अतः भ्रान्ति स्थल में सादृश्य होना आवश्यक है। यही कारण है कि रज्जू में कभी रजत की और शुक्ति में कभी सर्प की भ्रान्ति नहीं होती। यह सादृश्य अनिर्वचनीय ख्याति में नहीं बन पाता। यतः भ्रान्तिस्थल में सर्वत्र अनिर्वचनीय एक तत्त्व की उत्पत्ति होती है, जो बाध ज्ञान होने पर समाप्त हो जाती है। नये-नये अनिर्वचनीय तत्त्व उत्पन्न होने से किसी का किसी के साथ सादृश्य नहीं बन सकता। अतः अनिर्वचनीय वाद विचार क्षम नहीं है। श्रीनागेशभट्ट ने भी वै० सि० मञ्जूषा के 'बौद्धवाच्पत्व निरूपण' में ऐसा विचार

व्यक्त किया है—"यत्त्वनिर्वचनीयं सदसद्विलक्षणं जलादिमृगतृष्णादावुत्पद्यते। एवं ब्रह्मणि प्रपञ्चो मृदादौ घटादि स्वाप्नश्चेति, तन्न तादृशानिर्वचनीयस्याप्रसिद्धया तद्भेदस्य वक्तुमशक्यत्वात् इत्यादि।

श्रीवेदान्तदेशिक ने न्यायपरिशुद्धि में अनिर्वचनीयख्याति का खण्डन किया है। अनिर्वचनीयख्यातौ—

अनिर्वाच्यतया वस्तु निरुच्येत न वा त्वया ?
आद्ये विरोधो, द्वितीयेऽस्मन्मतस्थितिः॥
सदसद्व्यतिरेकोऽपि विरुद्धो यदि गृह्यते।
सदसद्रूपता चापि प्रतीता तन्न गृह्यते॥
अनुष्णाशीतवत्तुच्छा ब्रह्मणश्चातिरेकिता।
साध्येत ख्यातिबाधादेर्यदि सिद्धं तदत्र सः॥

पृथ्वी में तेज उष्णस्पर्श, जल शीतस्पर्श इन दोनों से विपरीत अनुष्णाशीत स्पर्श है। इसी प्रकार प्रपञ्च में सदसद् परस्पर विरुद्ध धर्म भी रह सकता है।

(शाङ्करवेदान्त में अनिर्वचनीय एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका निर्वचन के द्वारा खण्डन नहीं हो सकता) इसी प्रकार नागेशभट्ट ने भी अपने 'वैयाकरण सिद्धान्त लघुमञ्जूषा' में अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति का खण्डन किया है। उनका कहना है कि अधिष्ठान का ज्ञान होने से किसी का नाश नहीं हो सकता। किसी का ज्ञान किसी का नाशक नहीं बनता। इसमें गौतमादि मुनियों के सिद्धान्त का उद्धरण दिया है। जैसे—"वस्तुतो मृदि घटादिविकारो भ्रम एव, न तु कोऽपि पदार्थ इति तदनन्यत्वम् इति सूत्रेणोक्तम्। किञ्च प्रसिद्धसामग्रीव्यतिरेकेऽपि यया सामग्र्या विषयासत्त्वेऽपि तदसन्निकर्षेऽपि ज्ञानाङ्गीकारे न बाधकम्। किञ्च अनिर्वचनीयोत्पत्तौ तस्य तावद्रजतत्वाश्रयत्वेन तज्ज्ञानस्य भ्रमत्वानापत्तिः। तस्य तदवृत्तिधर्म-

प्रकारकत्वाभावात्। ....व्यासस्यापीदमेव च मिथ्याज्ञानमभिप्रेतम्। तेनान्यत्तल्लक्षणानुक्तेः। सांख्यसूत्रसूचितानिर्वचनीयख्यातेरपि तत्सूत्रानारूढत्वात्। तेन सांख्योक्तसदसत्ख्यातेरेव तदभिमतत्वं लक्ष्यते। किञ्च शुक्तिरजतस्थलेऽधिष्ठानज्ञानेन तन्नाशो वाच्यः। न च तस्य वस्तुनाशकता दृष्टा। अतएव गोतमादिभिरुत्पत्तिस्तत्रनोक्ता। अन्यथा घटादिवत्तत्राप्युत्पत्तिरेव वदेयुः। शुक्त्यादिसमवायिकारणं चाकचिक्याद्यसमवायिकारणं दोषोनिमित्तकारणं वक्तुं शक्यत्वात्। अन्यथाख्यातिरित्येव चोक्तं तदीयैः। अन्यथाख्यातिरित्यनेन प्रकारस्यान्यत्र सत्त्वं सूचितम्। तत्सम्बन्धोऽप्येवमेव तदनुयोगित्वमप्येवमेवेति सूचितम्। संयोगसमवाययोः सम्बन्धस्यानुयोगित्वादिभाननियतत्वात्। उत्पत्तिनाशकल्पनापेक्षया प्रमास्थले क्लृप्तस्यैव तत्त्वौचित्यात्। सत्त्वासत्त्वान्यतररूपेणानिर्वचनीयत्वं न तु सदसद्विलक्षणत्वम् इति तद्व्याख्यातारः।"

(वै० सि० ल० मञ्जूषा बौद्धार्थ नि०)

६. अपूर्णख्यातिरूपा अख्याति

कश्मीरप्रत्यभिज्ञादर्शन में भ्रमस्थल में अपूर्णख्याति मानी जाती है। यह अपूर्णख्याति प्राभाकार मीमांसकों की अख्यातिवाद का ही एक परिवर्तित रूप है। शिवाद्वैत में 'प्रकाशमानत्वं सत्यम्' इस सिद्धान्त के अनुसार 'इदं रजतम्' तथा 'नेदं रजतम्' ये दोनों प्रकार के ज्ञान दो विमर्शस्वरूप हैं। इसलिए दोनों ही आभासस्वरूप हैं तथा सत्य हैं। अन्तर इतना ही है कि पहले शुक्ति में 'इदं रजतम्' ऐसा विमर्श हुआ। रजत के लिए प्रवृत्त होने पर कारणवश द्वितीय विमर्श 'नेदं रजतम्' ऐसा होता है। इन दोनों विमर्शों के मध्य में कुछ काल का अन्तर अवश्य है किन्तु प्रथम विमर्श 'इदं रजतम्' से लेकर द्वितीय 'नेदं रजतम्' इस विमर्श तक आते हुए बोध का द्वितीय

विमर्श से बाध हो गया। इसलिए इसको भ्रम कहते हैं। शुद्धरजत स्थल में ऐसे दो विमर्श नहीं होते तथा पर विमर्श से द्वितीय विमर्श का बाध नहीं होता। अतः वहाँ भ्रम नहीं कहा जाता।

शुक्ति में 'इदं रजतम्' इस ज्ञान से बाधित होने पर भी प्रथम विमर्श 'इदं' अंश का तो बाध होता नहीं। क्योंकि द्वितीय विमर्श 'नेदं रजतम्' काल में भी इदन्ता की अनुवृत्ति रहती है। द्वितीय विमर्श से रजताभास का भी बाध नहीं होता, क्योंकि प्रमाता को मुझे रजताभास हुआ ऐसी प्रतीति होती है। अतः 'इदं रजतम्' इस स्थल में 'इदं' और 'रजतम्' दोनों के विमर्श होने से दोनों ही सत्य हैं। इसी प्रकार 'नेदं रजतम्' विमर्शकाल में 'इदं' तथा 'रजतम्' दोनों ही सत्य हैं। भ्रान्ति स्थल में केवल इदमंश और रजतांश समानाधिकरण रूप संवन्ध का बाध होता है। अतः संबन्ध अंश में भी भ्रान्ति है। इसीलिए यह भ्रान्ति पूर्ण नहीं हुई। इसीलिए इसको अपूर्णख्याति कहते हैं। यहाँ पर इदमंश प्रत्यक्षज्ञान है और रजतांश स्मृतिरूप। यह स्मृतिरूप मानस आभास है। स्मृति इसलिए है कि जिसने कभी रजत नहीं देखा है, उसको शुक्ति रजत का मानस आभास नहीं होता।

सत्य रजत और भ्रान्ति के रजत में इतना ही अन्तर है कि सत्य स्थल में 'इदं रजतम्' ऐसा विमर्श जो हुआ वह बाद में भी वैसा ही रहेगा। किन्तु भ्रमस्थल में जो 'इदं रजतम्' यह विमर्श है वह उत्तरकाल में 'नेदं रजतम्' इस विमर्श में बाधित हो जाता है। सत्य रजतस्थल में 'इदं रजतम्' इस विमर्श के बाद इसके विरोधी 'नेदं रजतम्' ऐसा द्वितीय विमर्श का उदय नहीं होगा। सत्यस्थल में 'इदं रजतम् में' 'इदं' तथा 'रजतम्' बोधकाल में भेद का बोध होता है। 'नेदं रजतम्' द्वितीय विमर्शकाल में केवल इदमंश तथा रजतांश के

सम्बन्ध मात्र का बाध होता है। रजतांश का बाध नहीं होता। श्रीमदभिनवगुप्त ने कहा भो है—"अतश्च पृथग् इदन्ताद्याभासेषु न काचन् भ्रान्तिः। मेलनांशे तु विमर्शानुवृत्तिनिर्मूलनं विमर्शोदय-कालादेव आरभ्य बाधकेन क्रियते इति तत्रैव भ्रान्तिभाव इति सिद्धम्। अतो यावता पूर्णेन रूपेण प्रख्यातव्यं विमर्शपर्यन्तं तावन्न प्रख्याति इत्यपूर्णख्यातिरूपा अख्यातिरेव भ्रान्ति तत्त्वम्।" (ई० प्र० वि० ३।१।१३।।२।३।१३) इस दर्शन में अख्याति शब्दगत नञ् का अर्थ ईषद् है अर्थात् कुछ-कुछ ख्याति है, सर्वथा ख्याति का अभाव नहीं है। इसीलिए इस मत में एकान्ततः अख्याति नहीं मानी जाती, किन्तु शुक्ति में रजत ख्याति है। रजत का बाध नहीं हुआ है। इदमंश और रजतांश के सामानाधिकरण्यरूप सम्बन्ध का बाध होता है। इस दर्शन के अनुसार पर तथा परापर अवस्थाओं में ही पूर्ण ख्याति मानी जाती है। संसारावस्था में प्रमाता को मायावश घटादि में अनात्माभिमान होने से अहंता और इदन्ता का तात्विक अभेद को ख्याति नहीं होने पाती। इसलिए सत्य रजतस्थल में भी मायावश अहंता तथा रजतता के साथ अभेद की ख्याति भी अपूर्णख्यातिरूपा अख्याति ही है। सत्य रजत विमर्श भी पर तथा परापर अवस्थाओं में शुक्तिरजतवत् अपूर्णख्यातिरूपा अख्याति है। माया का सम्पूर्ण राज्य ही भ्रान्ति है—"मायापदं हि सर्वभ्रान्तिरेव।" (ई० प्र० वि० २।३।१२)। यही बात श्रीमहेश्वरानन्द प्रणीत विरूपाक्षचन्द्रिका के बावनवें श्लोक में क्षेमराजकृत प्रत्यभिज्ञाहृदय का उद्धरण देते हुए कहा है कि अपूर्णख्याति एक प्रकार से अख्याति ही है—"अख्यातिर्यदि...... अपूर्णख्यातिरूपा अख्यातिरेवाङ्गीकृता।"

उत्पलाचार्यजी ने भी कहा है—शिवैक्याख्यातिरूपभ्रान्तिमय संसारावस्था यावन्नोन्मिषति तावदपि तावत्येवोक्तरूपशिवता। (शिव दृष्टि, १।३।४ टीका) अर्थात् यह संसारावस्था शिवैक्य की

अख्याति रूप भ्रान्ति है। संसारावस्था में संसार और शिव एक रूप से प्रतीत नहीं होता, जो वस्तुतः एक है। यही ऐक्य की अप्रतीति ही अख्याति है और यही अख्याति भ्रान्ति है। जब तक उन्मेष अर्थात् प्रत्यभिज्ञा नहीं होती तब तक भी ऐक्यरूप है और शिव-रूप ही संसार है। अर्थात् भ्रान्ति काल में भी संसार शिव से भिन्न नहीं होता शिवस्वरूप ही रहता है।

अपूर्णख्याति का परिशीलन :

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (२।३।१३) में अपूर्णख्याति को अख्यातिरूप से स्वीकार किया गया है और दूसरी बात यह है कि अख्याति शब्द में नञर्थ ईषद् मान कर कुछ-कुछ भ्रान्ति यह अर्थ भी किया गया है। यह भी कहा गया है कि संसारावस्था में सदा भ्रम रहता ही है, किन्तु ऐसा मानना पारमार्थिक सत्य को समझाने के लिए परमार्थ को सत्य मानना और व्यवहार जगत् को अख्याति कहना ठीक हो सकता है, पर दैनिक, लौकिक व्यवहार में 'इदं रजतम्' इस भ्रमस्थल में उक्त अपूर्णख्याति का सामञ्जस्य नहीं बन सकता। यतः आपणस्थ सत्य रजत को भी अपूर्णख्याति के अन्तर्गत मान लेने पर लोक-व्यवहार नहीं बन पायगा। साथ ही प्रत्यक्षात्मक तथा स्मरणात्मक दो ज्ञान एक साथ मानने पर जो दोष प्राभाकार सम्मत अख्यातिवाद में है वे यहाँ भी होंगे। एक बात और है अपूर्णख्याति पक्ष में व्यवहार जगत् में 'इदं रजतम्' 'नेदं रजतम्' ये दोनों अपूर्ण-ख्यातिरूप से सत्य हैं। तब 'नेदं रजतम्' से 'इदं रजतम्' इस ज्ञान का बाध नहीं होगा।

७. यथार्थख्याति

विशिष्टाद्वैत में श्री रामानुजाचार्य तथा श्री वेदान्तदेशिक आदि आचार्य भ्रमस्थल में यथार्थख्याति मानते हैं। इस सिद्धान्त में

'शुक्तौ इदं रजतम्' शुक्ति में 'इदं रजतम्' इस प्रकार का ज्ञान होता है, वह यथार्थ रजत का ज्ञान है, अयथार्थ रजत का नहीं। इनका यह कहना है कि त्रिवृत्करण प्रक्रिया के द्वारा पृथ्वी आदि सभी महाभूतों में सभी महाभूतों के यथा भाग अंश न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं। अतः शुक्ति में रजत के अवयव विद्यमान हैं। वह विद्यमान रजतावयव ही 'इदं रजतम्' रूप से भासित हो रहा है। सभी पदार्थों में सभी के अवयव होने पर भी 'तत्तदवयवभूयस्त्व-निबन्धनोव्यपदेशः' अर्थात् जिस पदार्थ में जो अवयव अधिक रहता है, उसी से उसका व्यवहार होता है। इस न्याय से रजतावयव अधिक होने से रजतादि में रजतादि व्यवहार होता है। शुक्ति में भी रजताव-यव है इसीलिए चाकचिक्यादि दोष से रजत भासित होने लगता है, परन्तु दोष मिटने पर पुनः शुक्ति व्यवहार होने लगता है। यतः शुक्ति के अवयव अधिक हैं। इसीलिए रजतांश के अवयव कम होने से रजत ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। बाधक ज्ञान से रजत ज्ञान अथवा रजत विषय बाधित नहीं होता, किन्तु रजत की प्रवृत्ति बाधित होती है। यहाँ रजत के साथ चक्षु का ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्ति मानी जाती है। उनका यह भी कहना है कि सोमलता के अभाव में पूतिका को लेना तथा व्रीहि के अभाव में नीवार को लेना—"यदि सोमं न विन्देत् पूतीनभिषुणुयात्। सोमाभावे बहुषु सदृशेषु प्राप्तेषु नियमः क्रियते। (शा०भा० ६।३।१६) अभावे तत्सामान्येन प्रतिनिधिः। (जै० सू० ६।३।३१)। सोमाभावे च पूतीकग्रहणं श्रुति चोदितम्। (श्री भाष्य)। सोमाभावे पूतीकानभिषुणुयादिति विधिर्नियमार्थः।"(श्रुतिप्रकाशिका)। यहाँ पूर्वमीमांसासम्मत सिद्धान्त भी सर्वत्र सभी के अवयव त्रिवृत्करण के द्वारा विद्यमान है, यह मानने पर ही बन सकता है। अतः सर्वत्र सभी के अवयव होने से एवं शुक्ति में रजतावयव होने से यथार्थख्याति हुई। अतः ख्याति जो होती है वह यथार्थ की ही होती है। प्राभाकर मत से

रामानुजीय मत में इतना भेद है। प्राभाकार मत में भी यथार्थख्याति है, पर इदम् यह अनुभवरूप यथार्थज्ञान है और रजतम् यह स्मरणरूप यथार्थज्ञान है। नैयायिक मत से भी रामानुजीय मत में थोड़ा भेद है। 'इदं रजतम्' ऐसा विशिष्टज्ञान दोनों मानते हैं, पर नैयायिक इस विशिष्ट ज्ञान को अयथार्थ कहते हैं और रामानुजीय इस विशिष्ट ज्ञान को यथार्थ कहते हैं। इसके लिए ब्रह्मसूत्र के श्रीभाष्य में तथा श्रीभाष्य की व्याख्या श्रुतिप्रकाशिका एवं तत्त्वमुक्ताकलाप आदि में बहुत विस्तार से विचार किया गया है। ब्र० सू० १।१।१ जिज्ञासाधिकरण के श्रीभाष्य में कहा है—

यथार्थं सर्वविज्ञानमितिवेदविदां मतम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यः सर्वस्य सर्वात्मत्वप्रतीतितः ॥१॥
बहुस्यामिति संकल्पपूर्वसृष्ट्याद्युपक्रमे ।
तासां त्रिवृतमेकैकामिति श्रुत्यैव चोदितम् ॥२॥
त्रिवृत्करणमेवं हि प्रत्यक्षेणोपलभ्यते।
यदग्ने रोहितं रूपं तेजस्तदपामपि ॥३॥
शुक्लं कृष्णं पृथिव्याश्चेत्यग्नावेव त्रिरूपता।
श्रुत्यैव दर्शिता तस्मात् सर्वे सर्वत्र संगताः ॥४॥
सूत्रकारोऽपि भूतानां त्रिरुपत्वं तथावदत्।
त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वादिति तेनाभिधाभिदा ॥५॥

इस मत में जैसे भ्रमस्थल में यथार्थप्रतीति है, वैसे ही स्वाप्नप्रतीति भी यथार्थ है।

यथार्थ ख्याति का परिशीलन :—

ख्याति का अर्थ आचार्य मण्डनमिश्र आदि ने विभ्रमविवेक आदि ग्रन्थों में विभ्रम किया है। इस प्रकार यथार्थख्याति का अर्थ

होगा—यथार्थ विभ्रम। विभ्रम यथार्थ नहीं होता। विभ्रम का लक्षण किया गया है—'व्यधिकरणवृत्तिप्रकारतावच्छिन्ना या विशेष्यता तन्निरूपकत्वं विभ्रमत्वम्। अथवा स्वाधिकरणावृत्तिनिष्ठप्रकारता-निरूपितविशेष्यतानिरूपकत्वम्'। अर्थात् अपने से भिन्न अधिकरण में रहने वाली प्रकारतानिरूपित विशेष्यता का जो निरूपक हो वह विभ्रम है। जैसे शुक्ति में 'इदं रजतं' इस विभ्रम स्थल में शुक्ति से भिन्न स्थल रजत में रहने वाली रजतत्वनिष्ठ प्रकारता से निरूपित रजतरूप विशेष्यता का निरूपक 'इदं रजतं' यह हो रहा है। अतः यह भ्रम है। अव स्वामी श्री रामानुज जी के सिद्धान्तानुसार शुक्ति में भी त्रिवृत्करण प्रक्रिया के अनुसार रजतरूप विशेष्यता है, तब अन्य अधिष्ठान में रहने वाली प्रकारता का निरूपक अन्यत्र रहने वाली विशेष्यता तो हुई नहीं। अतः उक्त विभ्रम का लक्षण घटित नहीं होगा। इस प्रकार स्वामी रामानुज जी के मत में पूर्वाचार्य सम्मत विभ्रम कहीं नहीं बन पायगा। अर्थात् उनके मत में विभ्रम है ही नहीं, यही कहना पड़ेगा और यह भी मानना पड़ेगा कि गंगाजल में सुरा का भी किंचिदंश है। साथ ही सर्वदा सभी पदार्थ सब में रहेंगे तो सर्वत्र सर्व विषयक भ्रम भी रहेगा। कभी भी भ्रमाभाव न बन सकेगा। अपने पक्ष की पुष्टि में उन्होंने कहा है कि सोमलता के अभाव में पूतिका ग्रहण तथा ब्रीहि के अभाव में नीवार ग्रहण रूप मीमांसा-सिद्धान्त भी प्रमाण है। यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि सर्वत्र सब पदार्थ है, तब पुतिका में भी सोम है एवं नीवार में भी ब्रीहि है, तब 'सोमाभावे' तथा 'ब्रीह्यभावे' कैसे कह सकते हैं? इस प्रकार तो मृगमरीचिका में जल भी यथार्थ होगा और जिस प्रकार अग्निदाह से रजत द्रवीभूत होता है, उसी प्रकार शुक्ति में भी द्रवत्व होना चाहिए। श्रीवेदान्तदेशिक ने यथार्थख्याति को श्रीनाथमुनि (श्री रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य) का वाग्वैभव कहा है—

यन्नाथमुनिमिश्राद्यैर्यथार्थख्यातिसाधनम् ।
तल्लोकबुद्ध्यनारोहाद् वैभवं केचिदूचिरे ॥
मानाद् रूप्यादिसत्त्वेऽपि तयोरन्यतरद्ध्रुवम् ।
कार्याक्षमत्वाग्रहणात् तत्क्षमत्वग्रहेण वा ॥
ख्यातान्तराणां दोषास्तु तत्तत्सिद्धान्तशीलने ।
स्वयमेवोन्मिषन्त्येव सङ्ग्रहात् किञ्चिदुच्यते ॥

(न्यायपरिशुद्धि १।१।३४)

अर्थात् यथार्थख्यातिवादियों का मत है—"यथार्थं सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम्"। पंचीकरण या त्रिवृत्करण प्रक्रिया के द्वारा सभी पदार्थ सभी पदार्थों में सन्निहित हैं। जहाँ जो पदार्थ अधिक है वहाँ उनका बोध होता है। अब प्रश्न यह है कि 'नेदं रजतं' इस ज्ञान का विषय क्या है? रजताभाव को नहीं कह सकते हैं, यतः रजतांश विद्यमान है यदि कहें कि कटकादि के योग्य रजत का अभाव विषय है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रथम ज्ञान में उस रजत की योग्यता का ज्ञान मानने पर अन्य ही योग्यता माननी पड़ेगी। इसका ज्ञान पूर्व ज्ञान में मानने पर तथा उसकी प्रमिति न मानने पर 'नेदं रजतं' इस ज्ञान से इसका बाध भी नहीं हो सकता है। यदि कहें कि उस रजत के कटकादि कार्य की योग्यता के असंसर्ग का ज्ञान पूर्व ज्ञान में नहीं होता है और उत्तरकालिक ज्ञान के द्वारा उसी का बाध होता है, तो ऐसा मानने पर अख्याति को ही स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार भ्रमस्थल में प्रमाणादि के द्वारा रजतादि की सत्ता रहने पर उसके कार्याक्षमत्व अथवा कार्यक्षमत्व के ग्रहण होने के कारण अन्यथाख्याति अथवा अख्याति को स्वीकार करना पड़ेगा।

८. सदसत्ख्याति

सांख्ययोग दर्शनानुसार भ्रमस्थल में सदसत्ख्याति मानी जाती

है। सांख्ययोगदर्शन सत्कार्यवादी कहा जाता है। इसके सिद्धान्त के अनुसार कारण में कार्य की सत्ता पहले से रहती है। जैसे तिल में तेल, जो यत्न करने पर तैल रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार दूध में घृत, जो प्रयत्न करने पर प्राप्त होता है। सिकता में तेल और जल में घृत पहले से नहीं है और प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं होता है। अतः कार्य को पहले से ही कारण में सत् माना जाता है। इस प्रकार चाकचिक्यादि दोष से शुक्ति में विद्यमान, अर्थात् सत् रजत की प्रतीति से पुरुष की प्रवृत्ति होती है और बाद में प्रयोजन या फल की सिद्धि न होने से रजत की असद् बुद्धि होती है। अतः भ्रमस्थल में सदसत्ख्याति मानते हैं। विज्ञानभिक्षु ने सांख्यसूत्र में कहा है—"सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात्"। (सां० सू० ५।६)। विज्ञान भिक्षु ने इसकी व्याख्या में कहा है—"स्वरूपेण सतः संसर्गतः अवस्थारूपेण अध्यस्तरूपेण वा असतः वस्तुनः प्रतीतिः सदसत् ख्यातिः"। यद्यपि यह कहा जाता है कि सांख्य तथा योग में एक ही सदसत् ख्याति है, पर योगसूत्र—'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्-रूपप्रतिष्ठम्'। (पा० यो० सू० १।८) के अनुसार प्रतीत होता है कि अद्वैतवेदान्ती के समान अतद्रूप, अनिर्वचनीय के समान है।

व्याकरण दर्शन में भी यह सदसत्ख्याति स्वीकृत है। श्री नागेश भट्ट ने अनेक ख्यातियों का खण्डन करते हुए अनिर्वचनीय का एक नया अर्थ किया है, जो सदसत्ख्याति के अर्थ से मिलता है। और इस नये अर्थ वाले अनिर्वचनीय के साथ सदसत् ख्याति की समानता दिखा कर सांख्यसम्मत् सदसत् ख्याति के लिए अपनी सम्मति दी है। नव्य वैयाकरण श्री नागेश भट्ट 'शशश्रृङ्गम्' तथा 'खपुष्पम्' आदि में पदत्व सिद्धि के लिए 'सुप्' आदि प्रत्यय तथा सुबादि के लिए प्रातिपदिक संज्ञा की आवश्यकता मानते है। प्रातिपदिक संज्ञा के लिए अर्थवान् शब्द का स्वरूप होना आवश्यक है।

शशश्रृङ्ग तथा खपुष्प आदि के अर्थ नहीं होते। अतः प्रातिपदिक संज्ञा के लिए बौद्ध (बुद्धिपरिकल्पित) अर्थ मानते हैं। इसके और भी फल हैं। जैसे 'अङ्कुरो जायते' में बुद्धि सिद्ध अङ्कुर में पूर्वभावित्वेन कर्तृत्व सम्पन्न होता है। रामो बभूव, कृष्णो बभूव आदि राम और कृष्ण शब्दों में बौद्ध अर्थ मानकर शक्तिग्रह होता है। इस प्रकार बौद्धार्थ स्वीकार होने के बाद 'नेदं रजतम्' इत्यादि भ्रमस्थल में बाध होने से पूर्व रजत, सत्त्वेन प्रतीत होता है और बाध हो जाने पर असत्त्वेन प्रतीत होता है। इस प्रकार आरोपित (बौद्धिक) सत्त्व (रजत में) है तथा बहिः अनारोपित रजत असत् है। इस प्रकार आरोपित एवं अनारोपित सत्त्व तथा असत्त्व का एकत्र समावेश सम्भव हो जाता है। यदि बौद्धिक अर्थ नहीं मानेगें तो अनारोपित सत्त्व एवं असत्त्व का परस्पर विरोध होने से एकत्र सत्त्वासत्त्व का समावेश नहीं हो पाता। वैयाकरणों की यही सदसत्ख्याति है। कहा भी है—"व्यासस्यापीदमेव च मिथ्याज्ञानमभिप्रेतम्। तेनान्यल्लक्षणानुक्तेः। सांख्यदूषितानिर्वचनीयख्यातेरपि तत्सूत्रानारूढत्वात्। तेन सांख्योक्तसदसत्ख्यातेरेव तदभिमतत्वं लक्ष्यते"। (वै० सि० ल० म० बौ० वाच्यत्व नि०) पुनः श्री नागेश ने इस सदसत् ख्याति को अनिर्वचनीय कहा और अद्वैतवेदान्ती के अनिर्वचनीयत्व का खण्डन किया—"सत्त्वासत्त्वान्यतररूपेणानिर्वचनीयत्वं न तु सदसद्विलक्षणत्वमिति"। (वै० सि० ल० म० बौ० वाच्यत्व नि०) श्री नागेश ने कहा है कि महर्षि गौतम ने भी 'अङ्कुरो जायते' वाक्य में उत्पत्ति से पूर्व असत् कार्य के लिए उत्पत्तिकर्तृत्व कैसे होगा? यह शंका करके 'बुद्धि सिद्धं तु सदसत्' यह सूत्र बनाया है।

सदसत्ख्यातिवाद का परिशीलन :

सांख्ययोग दर्शन को सत्कार्यवादी होने से सदसत्ख्यातिवादी

नहीं कहा जा सकता। उपादान कारण का कार्यात्मना परिणत होना सत्कार्यवाद है। अर्थात् उपादान कारण में कार्य की सत्ता पहले से रहती है। जैसे तिल में तैल, दूध में घृत आदि। किन्तु शुक्ति में भ्रमस्थल में 'इदं रजतं' इस भ्रम में शुक्ति तथा रजत का कार्यकारण भाव नहीं है।

श्री नागेशभट्ट ने जो बौद्धार्थ की स्थापना करके सदसत्ख्याति की व्याख्या की है वह ठीक नहीं है। क्योंकि बौद्ध अर्थ न मानने पर भी अनर्थक शशशृङ्ग में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा हो जायगी। "अर्थवदधातु०" सूत्र में 'अर्थवद्विषयक प्रतीत्यविषयत्वम् अर्थवत्त्वम्', ऐसा अर्थवत्त्व मानकर 'शशशृङ्गम्' आदि में अर्थवत्त्वात् प्रातिपदिक संज्ञा हो सकती है क्योंकि शशपद भी अर्थवान् है और शृङ्गपद भी अर्थवान् है। कुछ विद्वान् ऐसा भी मानते हैं कि 'कृत्तद्धित०' सूत्र अनर्थक की भी प्रातिपदिक संज्ञा करता है। अतः इसी से प्रातिपदिक संज्ञा हो जायगी। बौद्धार्थ न मानने पर शशशृङ्गम् में 'समर्थः पदविधिः' पाणिनि सूत्र से समास प्रयोजक सामर्थ्य न होने पर समास कैसे होगा ? यह शंका नहीं करनी चाहिए। एकार्थीभाव सामर्थ्य न होने पर भी एकवाक्यतारूप व्यपेक्षारूप सामर्थ्य को समासप्रयोजक मानकर समास किया जा सकता है, ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं। 'अङ्कुरो जायते' यहाँ पर बौद्धार्थ मान कर भी जनिपूर्ववर्तिकर्तृत्व हो सकता है। जैसे अद्वैतवेदान्ती के मत में सभी वस्तु स्वरूपतः सत् हैं तथा चैतन्य में अध्यस्तरूपेण असत् हैं। इस प्रकार अद्वैतवादी भी सदसत्वादी हुए। इसलिए अनागत एवं वर्तमान तीनों कालों में अङ्कुर स्वरूपतः अनुस्यूत है, उसी प्रकार सांख्ययोग एवं व्याकरण में भी मान लेंगे। इससे पूर्ववर्त्तिजनिकर्तृत्व बन जायगा। इस प्रकार बौद्धार्थ मान कर सदसत्ख्याति का समर्थन करना ठीक नहीं।

वस्तुतः सांख्ययोग दर्शन सदसत्ख्यातिवादी नहीं हैं, अपितु अख्यातिवादी है। ब्रह्मसूत्र (२।२।१०) की भामती कल्पतरु तथा कल्पतरुपरिमल व्याख्याओं में यह कहा गया है। उक्त सूत्र के शाङ्करभाष्य में सांख्ययोग सम्मत अपवर्ग पर विचार करते समय भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि पुरुष में सुख-दुःखादि भाव या तप्यतापकादि भाव नहीं होते। ये सब अविद्या में, प्रकृति में, अथवा सत्त्वबुद्धि में होते हैं और प्रकृति तथा पुरुष में परस्पर अन्यताख्याति न होने से, परस्पर अविवेक अथवा अविभाग समझने से पुरुष में तप्ति अथवा दुःख का बोध होता है और प्रकृतिपुरुषान्यताख्याति अथवा प्रकृतिपुरुष में परस्पर भेदज्ञान या विवेकज्ञान होने से अपवर्ग होता है। यथा—'बुद्धिसत्त्वे तप्ये तदविभागापत्त्या पुरुषोऽप्यनुतप्यत इव। न तु तप्यतेऽपरिणामित्वादित्युक्तं तदविभागापत्तिश्चाविद्या' (भामती) इस पर वेदान्तकल्पतरु में कहा है—"तथापि तथा स्फुटं न भातीति तात्पर्यम्। अविभागापत्तेश्चेत्यत्र अविभागो नैक्यम्। अख्यातिवादिनः सांख्यस्य मते भ्रमविषयैक्यविर्वताभावादित्याशङ्क्य विवेकाग्रह एवाविभागशब्देन विवक्षित इति व्याचष्टे अविवेक इति"। इस प्रकार स्पष्टरूप से सांख्ययोग दर्शन को अख्यातिवादी स्वीकार किया गया है। पंचपादिका विवरण तथा उसकी टीका तत्त्वदीपन में भी सांख्य को अख्यातिवादी कहा गया है। सत्त्वादि गुणों के नित्य होने से सभी वस्तुएं स्वरूपतः सत् तथा संसर्गतः उनका बाध होने से असत् है। यही सदसत् का भाव है। वृक्ष अवस्थाविशेष से सत् होकर भी अंकुरावस्था से असत् है। इस प्रकार 'अङ्कुरो जायते' में पूर्ववर्तिजनिकर्तृत्व बन जायगा। बौद्धार्थ मानने की आवश्यकता नहीं है। 'सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधाभ्याम्'। (सां० सू० ५।४) इस सूत्र का भी यही भाव है।

'सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधाभ्याम्' इस सूत्र के व्याख्यानुसार

सदसत्ख्याति और श्री नागेशभट्ट के अभिमत सदसत्ख्याति में भेद है। सूत्र कहता है– स्वरूपेण सब सत् है। संसर्ग से, अवस्था-विशेष से अथवा अध्यस्तरूपेण असत् वस्तु की प्रतीति होती है और श्री नागेशभट्ट कहते हैं कि भ्रमस्थल में अनारोपित बौद्ध अर्थ रजत सत् है और आरोपित (भासित) रजत असत् है। बाध होने पर रजत में असत्त्व की प्रतीति होती है। इस प्रकार दोनों में भेद होने से सांख्योक्त सदसत्ख्याति श्री नागेशाभिमत सदसत्ख्याति से भिन्न है। बौद्ध अर्थ की कल्पना के निष्प्रयोजन, निःसार सिद्ध हो जाने पर नागेशाभिमत सदसद्वाद स्वतः असिद्ध हो जायगा। सांख्य सभी पदार्थों को स्वरूपतः सत् तथा संसर्ग या अवस्थाविशेष आदि के द्वारा असत् मानता है, तब तो अद्वैत वेदान्ती भी सदसद्वादी कहे जायगें। यतः ब्रह्मत्वेन सभी पदार्थ सत् हैं और अध्यास से सभी पदार्थ असद् हैं। सांख्य के अनुसार सत्त्व आदि गुण नित्य हैं अतः सत् हैं और घट आदि अवस्थाविशेष से अनित्य अर्थात् असत् हैं। तब तो सभी पदार्थ सदसद् हो जायगें। इस प्रकार सदसद्वाद विचारणीय है।

९. अभिनवान्यथाख्याति (माध्वमत में)

द्वैतवादी माध्वदर्शनमत में अभिनवान्यथाख्याति मानी जाती है। इस मत के अनुसार अत्यन्त असत् रजत का शुक्ति में भान होता है। सत् शुक्ति का सर्वथा असत् रजत के रूप में भान होना ही अभिनवान्यथाख्याति है। इस अन्यथाख्याति को अभिनव-अन्यथाख्याति इसलिए कहते हैं कि नैयायिकाभिमत अन्यथाख्याति से यह भिन्न है। अर्थात् यह एक नये प्रकार की अन्यथाख्याति है। स्वामी जयतीर्थ के अनुसार न्यायसुधा ग्रन्थ के अनुव्याख्यान व्याख्या में यह स्पष्ट किया गया है। यहाँ यह शङ्का उठती है कि असत्

की अर्थात् जो सत् नहीं है, उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है ? इसके समाधान के लिए कहा जाता है कि भ्रम दूर होने पर यह अनुभव होता है कि मुझे असत् रजत का भान हुआ। इस प्रकार का अनुभव ही असत् की प्रतीति में प्रमाण है। यहाँ अत्यन्त असत् का यह अर्थ किया जाता है कि जो रजत आपण में नहीं है और यहाँ भासित है वह सर्वथा असत् है। वस्तुतः ये असत्ख्यातिवादी हैं, पर असत्-ख्याति शब्द के प्रयोग करने पर बौद्धमाध्यमिक शून्यवादी के मत जैसा प्रतीत होने लगेगा। अतः ये अपने भ्रमसिद्धान्त को अन्यथा-ख्याति कहते हैं। पर अन्यथाख्याति कहने पर नैयायिकों के भ्रम सिद्धान्त जैसा प्रतीत होने लगता है। अतः अभिनवान्यथा-ख्याति कहते हैं। बौद्धमत से इसमें यह अन्तर है कि बौद्धमत में अधिष्ठान शुक्त्यंश भी असत् है, और सर्वात्मना असत् है, किन्तु यहाँ इदमंश सत् है और इसमें भासित होने वाला रूप्य आदि का सर्वथा असत्त्व नहीं है। भ्रमस्थल में अन्यरूपेण भासित हो रहा है। आपण में स्थित सत्य रजत ही दोषविशेष के कारण तथा भासित होता है। यह सर्वथा सर्वत्र असत् नहीं है जैसा बौद्ध में माना जाता है।

अभिनवान्यथाख्याति का परिशीलन :

इस अभिनवान्यथाख्याति की जो व्याख्या की जाती है, उसमें अन्यथा शब्द के अर्थ के साथ सामञ्जस्य नहीं बैठता। 'अन्यथा' यह शब्द 'प्रकारवचने थाल्' इस पाणिनि सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसलिए अन्यथा का अर्थ—अन्य प्रकारक होता है। अतः अन्यथा शब्द का अत्यन्त असत् अर्थ करना सम्भव नहीं है। यदि अन्यथा का अर्थ असत् करना है तो अभिनवान्यथाख्याति के स्थान पर अभिनवासत्ख्याति शब्द का प्रयोग अति उचित होगा। अतः अभिनवान्यथाख्याति शब्द, इसके अर्थ एवं इसकी व्याख्या में सामञ्जस्य न होने से यह ख्याति विचारणीय है। नैयायिकों की

अन्यथाख्याति में शुक्ति, रजत और तादात्म्य ये तीनों सत्य हैं। नैयायिकों के यहाँ भ्रम असद् विषयक नहीं है, किन्तु व्यधिकरण प्रकारक है। शुक्ति में रजतत्वतादाम्य का भासित होना ही व्यधिकरण प्रकारकत्व है। अतः 'इदं रजतं' इस भ्रमस्थल में असत् रजत रूप से शुक्त्यंश भासित हो रहा है यह कहना ठीक नहीं है।

१०. सत्ख्याति (कतिपय वैष्णवों के मत में)

भागवत में आचार्य वंशीधर स्वामी ने अपनी वंशीधरी टीका में सत्ख्याति का वर्णन किया है और लिखा है कि सत्ख्याति वैष्णवों को है। उन्होंने लिखा है कि यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म के शक्तिरूप होने से तथा—'सदेवसौम्येदमग्र आसीत्' इस श्रुति के प्रमाण से सत्य स्वरूप है। अतः जो कुछ भी देखा जाता है और जिस किसी का भी भान होता है, वह सब सत्य है। अतः भ्रमस्थल में सत्ख्याति माननी चाहिए।

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्ति विजिगीषताम्।
आन्वीक्षिकीकौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम्॥
(श्रीमद्भागवत ११।१६।२७)

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की टीका में श्री वंशीधर स्वामी लिखते हैं—

वैष्णवास्तु—एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्नाविस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥

इति सर्वस्य भगवच्छक्तिरूपत्वाभिधानात् सदेव सौम्येदमग्र आसीत् इति सर्वस्य सत्यत्वाङ्गीकारात् सर्वत्र सत्ख्यातिरेव सद्धेतुका सत्ख्यातिरिति लक्षणादिति मन्यन्ते।

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।
तथानिर्वचनीयख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम् ॥
विज्ञानशून्यमीमांसातर्काद्वैतविदांमतम् ॥ इति।

सत्ख्याति का परिशीलन :

श्री वंशीधर स्वामीजी के मतानुसार भगवान् नारायण की शक्ति का स्वरूप जगत् है। इसलिए जिस प्रकार शक्ति नित्य और शाश्वत सत्य है, उसी प्रकार सब कुछ शाश्वत है। अतः भ्रमस्थल में अधिष्ठान और अध्यस्त दोनों पदार्थ सत्य हैं। यहाँ पर स्वामीजी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि पूर्ववर्त्ती ज्ञान तथा उत्तरवर्ती ज्ञान में भेद का कारण क्या है? इसी प्रकार पूर्ववर्ती भ्रमात्मक ज्ञान का उत्तरवर्ती बाधज्ञान से बाध क्यों होता है? यतः जब दोनों प्रकार के ज्ञान शक्त्यात्मक रूप से सत्य हैं, तब एक ज्ञान को सत्य कहना तथा एक के बाध होने पर मिथ्या ज्ञान नहीं कह सकते और सभी सत् हैं तो ख्याति तथा विभ्रम किसको कहा जायगा? यहाँ पर 'सतो विभ्रमः' या 'सदेव विभ्रमः' ये दोनों प्रकार नहीं बन सकते। अतः सत्ख्याति पक्ष विचारणीय है। यह एक प्रकार से यथार्थख्याति जैसी हो सकती है। इसमें दोष भी उसी प्रकार के हो सकते हैं।

११. प्रसिद्धार्थख्याति (चार्वाकमत में)

न्यायभूषण में प्रसिद्धार्थख्याति, अलौकिकार्थख्याति और स्मृतिप्रमोषख्याति इन तीनों का खण्डन किया गया है। इनमें प्रथम प्रसिद्धार्थख्याति चार्वाक का है। इसका कहना है कि सब कुछ प्रमाणसिद्ध होकर ही प्रतिभासित होते हैं। जैसे घट प्रमाण सिद्ध होकर प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार भ्रान्तिस्थल में रजत भी प्रमाणसिद्ध होकर प्रतिभासित होता है। इसलिए जैसे

प्रतिभासित घट की सत्ता है, वैसे ही भ्रान्तिस्थलीय रजत की भी सत्ता है। यदि कहा जाय कि भ्रान्तिस्थल में रजत में, उत्तरकाल में बाध होने से रजत की सत्ता नहीं है तो आकाशीय विद्युत् का भी उत्तरकाल में अप्रतिभान होने से, आकाशीय विद्युत् की सत्ता भी सिद्ध न हो पायगी। अतः प्रमाणसिद्ध अर्थ की ही प्रतीति भ्रान्तिस्थल में भी होती है, यही प्रसिद्धार्थख्याति है। जैसा कहा है—"तेषांमयमाशयः भ्रान्तावपि प्रमाणसिद्ध एवार्थः प्रतिभाति। करतलादेरपि प्रतिभास-वलेनैव सत्त्वं सिद्ध्यति। स च प्रतिभासः भ्रमेऽप्यस्ति। यद्यप्युत्तर-काले न सोऽर्थः प्रतिभाति, तथापि यदा प्रतिभाति तदा सोऽर्थोऽस्त्येव। अन्यथा विद्युदादेरपि कालान्तरेऽप्रतिभानात् सत्ता न सिद्ध्येत। तस्मात् प्रामाणिकस्यैव अर्थस्य प्रतीतिर्भ्रमेऽपि"।

(न्यायभूषण पृ० २६)

प्रसिद्धार्थख्याति का परिशीलन :

यदि सभी ज्ञान प्रसिद्ध अर्थविषयक ही होते हैं और प्रमाणसिद्ध ही होते हैं तो यह ज्ञान भ्रान्त और यह ज्ञान अभ्रान्त है इस प्रकार की व्यवस्था ही समाप्त हो जायगी। साथ ही ज्ञानों के परस्पर बाध्यबाधक भाव भी समाप्त हो जायेंगे। यतः सभी ज्ञान प्रसिद्धार्थ विषयक हैं और प्रमाणसिद्ध हैं। इसी प्रकार सभी ज्ञानों से अर्थ-क्रियाकारित्व भी होने लगेगा चाहे वह ज्ञान भ्रान्त हो या अभ्रान्त हो, क्योंकि प्रसिद्धार्थ प्रतीति में भ्रान्त तथा अभ्रान्त दोनों ज्ञान समान हैं।

१२. अलौकिकार्थख्याति (भट्ट उम्वेक)

आचार्य भट्ट उम्वेक ने श्लोकवार्तिक ग्रन्थ में (वा० २२२ पृष्ठ—५२) में अलौकिकार्थख्याति का उल्लेख किया है। इस सिद्धान्त में

यह माना गया है कि सभी विज्ञान सत्य ही होते हैं। इसलिए 'इदं रजतम्' इस भ्रान्तिस्थल में भी प्रत्यक्ष प्रमाण से रजत ही अवभासित होता है। यह अवभासन प्रामाणिक है। जैसे दूसरे प्रत्यक्षप्रमाणजन्य अवभासन प्रामाणिक हैं, वैसे ही शुक्ति में रजत का अवभासन भी प्रामाणिक है। इनमें एक अवभासन लौकिक है तथा एक अलौकिक है। इस भेद का कारण व्यवहार का प्रवर्तकत्व और व्यवहार का अप्रवर्तकत्व है। आपण में जो रजत व्यवहार का प्रवर्तक है वह लौकिक रजत है और जो रजत आपण में व्यवहार का प्रवर्तक नहीं है वह अलौकिक रजत है। यही अलौकिकार्थ-ख्याति है।

अलौकिकार्थख्याति का परिशीलन :

आचार्य उम्वेक ने इस ख्याति के खण्डन में यह कहा है कि भ्रान्तिस्थल में अलौकिक रजत का अवभास होता है, यह कहना युक्तियुक्त नहीं है। यतः अलौकिक रजत में कोई प्रमाण नहीं है। अर्थात् अलौकिक रजत अप्रसिद्ध है। क्योंकि रजत प्रतिभासकाल में, यह लौकिक रजत प्रतिभासित हो रहा है अथवा यह अलौकिक रजत प्रतिभासित हो रहा है ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती। यदि कहा जाय कि लोकसम्मत रजत से विलक्षण यह रजत है, एतावता यह अलौकिक है, तो यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि प्रतिभासकाल में वैलक्षण्येन प्रतिभासित होता है तो उत्तरकाल में 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानकाल में 'न लौकिकम्' ऐसा भी ज्ञान होने लगेगा। और यदि प्रतिभासकाल में 'अवैलक्षण्येन भासते' यह माना जाय तो यह कहना पड़ेगा कि विलक्षण होकर भी अविलक्षण रूप से भासित हो रहा है। इस प्रकार यदि अविलक्षण भी विलक्षण रूप से भासित हो रहा है तो यह एक प्रकार से विपरीत ख्याति ही समझी जायगी। आचार्य उम्वेक ने ये सब दोष दिखलाये हैं।

१३. स्मृतिप्रमोषख्याति (भट्टउम्वेक)

यहीं पर आचार्य उम्वेक ने स्मृतिप्रमोषख्याति का भी उल्लेख किया है। इसे स्मृतिप्रमोषवाद भी कहते हैं। यह प्रभाकर सम्मत अख्याति का ही नामान्तर है। स्मृतिप्रमोष का अर्थ किया जाता है—प्रमुष्टतत्ताकरजतस्मरण। अर्थात् शुक्तिरजत के भ्रमस्थल में शुक्तित्व का प्रमोष (भूलना) और रजत्वप्रकारक रजत का स्मरण होना। पुरोवर्ती शुक्तिखण्ड से इन्द्रिय सन्निकर्ष होने से 'इदम्' ऐसा ज्ञान होता है। उसके शुक्तिगत चाकचिक्य दोष से रजत संस्कार उद्बुद्ध होता है। इससे आपणस्थ रजत का स्मरण 'इदं रजतम्' इस रूप में होता है। यही स्मृतिप्रमोषख्याति है। बृहती टीका में प्रभाकर के इस मत का उल्लेख है।

स्मृतिप्रमोषख्याति का परिशीलन :

यह विपरीतख्याति का ही नामान्तरण है। अतः विपरीत-ख्याति के समान ही इसके युक्तायुक्तत्व का विचार होगा।

१४. निर्विषयख्याति (किसी एकदेशी विद्वान् का मत)

श्री वेंकटदेशिक ने अपने ग्रन्थ न्यायपरिशुद्धि में प्रत्यक्षाध्याय के प्रथम आह्निक में निर्विषया ख्याति का खण्डन किया है। यहाँ पर टीका में निर्विषया ख्याति का स्वरूप लिखा है—

भ्रमे निर्विषयावृत्ति ज्ञानाभासतयास्थितः।

अर्थात् भ्रमस्थल में ज्ञान की वृत्ति निर्विषयिणी होती है। वहाँ होने वाला ज्ञान ज्ञानाभास होता है। ये कहते हैं कि पतञ्जलि का भी यही मत है—शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः (पा० यो० सू० ९)

अर्थात् उस ज्ञान को विकल्प कहा जाता है, जिसका विषय कोई वस्तु नहीं होता, किन्तु वह ज्ञान शब्द मात्र सुनने से होता है।

निर्विषयख्याति का परिशीलन :

निर्विषयख्याति पक्ष में निर्विषय शब्द से क्या अभिप्रेत है ? विषय की प्रतीति की अलीकता या भ्रमस्थल में विषय की अविद्यमानता अथवा विषय की प्रतीति का न होना। यदि प्रथम विकल्प माना जाय तो यह ख्याति असत्ख्याति किसी प्रकार से कही जायगी। वस्तुतः असत्ख्याति भी नहीं कह सकते। क्योंकि विषय की प्रतीति होती है। अतः वह अलीक नहीं है। यदि निर्विषय शब्द को मिथ्यापरक कहा जाय तो यह ख्याति अनिर्वचनीय-ख्याति होगी। यदि दूसरा विकल्प माना जाय—भ्रमस्थल में विषय की अविद्यमानता। अर्थात् अविद्यमान की विद्यमान रूप से प्रतीति, तो इसे अन्यथाख्याति कह सकते हैं। यदि तीसरा विकल्प माना जाय—विषय की प्रतीति का न होना, तो इसका अभिप्राय यह होगा कि विषय तो है पर उसकी प्रतीति नहीं होती। ऐसा मानने पर निर्विषयख्याति, यह सिद्धान्त ही नहीं बन पायगा। क्योंकि रजतादि की प्रतीति के बिना उसका ज्ञान कैसे होगा ? और यदि ज्ञान होता है तो उसकी प्रतीति क्यों नहीं होगी ? जैसा कहा है—

निर्विषयख्यातौ—

विषयालीकभावादौ ख्यात्यन्तरपरिग्रहः ।
अनुल्लेखस्तु रूप्यादि धीरित्युक्त्या निर्वहितः ।
ततश्चान्यथाधीर्वा तद्धेतुमतिरेव वा ।
भ्रान्तिर्वस्तुविरूपस्य व्यवहारस्य कारणम् ।।

(न्या० परि० १।६।३४)

इस प्रकार श्री वेदान्तदेशिक ने अन्यथाख्याति को माना है, अथवा अन्यथाख्याति के कारणभूत असंसर्गाग्रह से विशिष्ट दो ज्ञानों को भ्रमस्थल में माना है। भ्रमव्यवहार कारण अन्यथाख्याति अथवा उसका कारणभूत असंसर्गाग्रह ही है। जैसा कहा है—

तद्वादिनाप्यवर्ज्यत्वात् ततोऽप्यख्याति लाघवम्।
स्वारस्यमन्यथाख्यातौ अख्यातौ लाघवं स्थितम्। (वहीं)

ब्रह्मसूत्र के श्रीभाष्य में जिज्ञासाधिकरण में अन्यथाख्याति में स्वारस्य तथा अख्याति पक्ष में लाघव दिखाया है। श्री वेदान्तदेशिक ने इसी ग्रन्थ में श्री रामानुज सम्प्रदाय की अभीष्टख्याति यथार्थख्याति को श्रीनाथमुनिमिश्र आचार्यों का वाग्वैभव कहा है—

यन्नाथमुनिमिश्राद्यैर्यथार्थख्यातिसाधनम्।
तल्लोकबुद्धचनारोहाद् वैभवं केचिदूचिरे।

(न्या० परि० १।६।३४)

अनिवर्चनीख्याति का मण्डन

इस प्रकार पूर्वलिखित १४ ख्यातियों के स्वरूप तथा उनके सिद्धान्तों का परिशीलन किया गया। पूर्वोक्त सभी ख्यातिसिद्धान्तों में न्यूनाधिकरूप में यत्किंचित् दोष आते हैं, उनमें मुख्य दोष ये हैं। जैसे—आत्मख्याति में आत्म शब्द में विज्ञान गृहीत है। भ्रमस्थल में जो रजत भासित हो रहा है, वह विज्ञानाकार है। प्रश्न है कि यह विज्ञान अनुभव कारण है? या अनुमान कारण है? यदि प्रथम पक्ष मानते हैं तो यह रजत बाह्य ही मानना पड़ेगा। यतः अन्तःस्थ मानने पर मैं रजत हूँ या मैं रजत वाला हूँ, ऐसा मानना पड़ेगा। विज्ञानवाद में अहम् अर्थ ज्ञान का ही है। भ्रमस्थल में रजत अनुभव में अनुमान तो संभव ही नहीं है।

इसी प्रकार असत्ख्याति पक्ष में भी एक बड़ा दोष यह है कि

सब कुछ असद् होने से भ्रम का अधिष्ठान नहीं बन पाता, क्योंकि निरधिष्ठान आरोप संभव नहीं है। असद् अधिष्ठान में असत् का भ्रम होना कठिन है।

अख्यातिवादी प्राभाकर मत में प्रत्यक्षात्मक तथा स्मृत्यात्मक दो ज्ञान माने जाते हैं, तब यह पूछा जायगा कि बाध होने पर स्मृत्यात्मक ज्ञान का बाध होता है कि प्रत्यक्षात्मक ज्ञान का ? अनुभव यही कहता है कि रजतभान का बाध होता है, स्मरणात्मक ज्ञान का बाध नहीं होता।

अन्यथाख्याति पक्ष में भी ऐसी ही बात है। इन्द्रियसन्निकृष्ट वस्तु का ही प्रत्यक्ष होता है, इन्द्रिय-असन्निकृष्ट का नहीं। तब शुक्ति-रजत भ्रमस्थल में इन्द्रियासन्निकृष्ट रजत का प्रत्यक्ष असंभव है। अलौकिकसन्निकर्ष को सभी दार्शनिक नहीं मानते। 'सुरभिचन्दम्' इस प्रत्यक्षस्थल में सुरभि अंश में स्मरणात्मक ज्ञान तथा चन्दन अंश में प्रत्यक्षात्मक ज्ञान मानकर अलौकिक सन्निकर्ष का खण्डन किया गया है।

अनिर्वचनीयख्यातिपक्ष में भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय रजत अदि की अनिर्वचनीय उत्पत्ति मान कर इन्द्रिय सन्निकर्ष और प्रत्यक्षज्ञान माना गया है।

अपूर्णख्याति पक्ष में अपूर्णख्याति को स्वयं ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी में अख्याति कहा गया है। अत: जैसे प्रत्यक्षात्मक तथा स्मरणात्मक दो ज्ञान एक काल में नहीं हो सकते, यह दोष प्राभाकर मत में दिया जाता है, वह यहाँ भी है। दूसरी बात यह है कि परमार्थ सत्य को समझाने के लिए सम्पूर्ण जगत् को ही अपूर्णख्याति कह सकते हैं, पर व्यवहार जगत् में, दैनिक व्यवहार में 'इदं रजतम्' 'नेदं रजतम्' इत्यादि स्थल में 'इदं' तथा 'नेदं' ये नही कह सकते।

क्योंकि 'इदं रजतम्' तथा 'नेदं रजतम्' ये दोनों ज्ञान अपूर्णख्याति है। तब जैसे 'इदं रजतम्' यह भी आंशिक सत्य होगा और 'नेदं रजतम्' यह ज्ञान भी आंशिक सत्य होगा। और जब ये दोनों ज्ञान समान हो जायगें तो एक ज्ञान दूसरे ज्ञान का बाधक नहीं बन पायगा।

श्री वैष्णव श्री रामानुजाचार्य आदि ने यथार्थख्याति मानी है। इसके समर्थन में त्रिवृत्तकरण के द्वारा सर्वत्र सर्वभूत पदार्थ के होने से, शुक्ति में रजतावयव होने से शुक्ति में रजतभ्रम यथार्थ है, ऐसा मानते हैं, पर यह ठीक नहीं है। क्योंकि यदि शुक्ति में रजतावयव होता तो दाह करने पर जैसे रजत द्रवित होता है तद्वत् शुक्ति को भी द्रवित होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि इस स्थिति में मृगमरीचिका में ईषदंश में जल भी मिलना चाहिए। तीसरी बात यह है कि 'सोमाभावे पूतिका', 'व्रीह्यभावे तु नीवारग्रहणम' इत्यादि नहीं बन पायगें। क्योंकि सर्वत्र सर्व है ऐसा मानने पर पूतिका में सोमाभाव और नीवार में व्रीह्यभाव नहीं कह सकते। चौथी बात यह है कि जैसे पार्थिव स्थाणु में पार्थिव पुरुष का भ्रम संभव है और पुरुषावयव का संबन्ध संभव नहीं है तथा जैसे पार्थिव वल्मीक में पार्थिव घट का भ्रम संभव है, पर पार्थिव घटावयव का संबन्ध संभव नहीं है। उसी प्रकार भ्रमस्थल में शुक्ति में रजतावयव संबन्ध संभव नहीं है। इसी प्रकार जैसे घट में घटत्व है, पर घटावयव नहीं है, तद्वत् पंचीकरण के द्वारा शुक्ति में रजतावयव होने पर भी रजतत्व संभव नहीं है। सबके अंश मानने पर घट में भी पटांश मानेगें, पर घट में पटत्व है, ऐसा कोई भी नहीं मानता। पाँचवीं बात यह है कि यथार्थख्याति एक प्रकार से अख्यातिवाद ही कही जायगी।

सदसत्ख्याति की व्याख्या सांख्यसूत्र के अनुसार यह है कि सत्त्वगुण के नित्य होने से सभी पदार्थ स्वरूपत: सत्य हैं तथा संसर्ग या अवस्था विशेष आदि से असत् हैं, तब तो सभी पदार्थ सत् एवं

असत् हैं फिर यथार्थज्ञान तथा भ्रान्तिज्ञान में भेद नहीं रह जायगा। श्री नागेशभट्ट ने बौद्धार्थ मानकर सदसद्वाद की व्याख्या की है, जो दूसरे दार्शनिकों को अभिमत नहीं है। पीछे लिखा जा चुका है। वस्तुतः सांख्यदर्शन अख्यातिवादी हैं। ब्रह्मसूत्र (२।२।१०) की भामती कल्पतरु और कल्पतरुपरिमल में यह स्पष्ट किया गया है। योगदर्शन ख्यातिवाद सांख्य से भिन्न है, जैसा पातञ्जल योगसूत्र—"मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिकम्" (१।८) से कहा गया है।

माध्वमतानुसार में अभिनवान्यथाख्याति में सत् शुक्ति में अत्यन्त असत् रजत का भान माना जाता है। यहाँ पर जिस किसी प्रकार अन्यथा का अर्थ असत् मानकर अभिनव अन्यथा ख्याति कहीं जाती है, जो अन्यथा शब्द का अत्यन्त असत् अर्थ करना संभव नहीं है।

श्री वंशीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत के (११।१६।२७) श्लोक की व्याख्या में वैष्णवों की ख्याति को सत्ख्याति कही है। उनका कहना है कि परमात्मा अपनी शक्ति से सर्वत्र सद्रूप से विद्यमान है। ऐसा मानने पर यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ये दो भेद नहीं बन पायगें। अतः सत्ख्यातिवाद विचारणीय है।

चार्वाक की प्रसिद्धार्थख्याति में सभी ज्ञान प्रमाण सिद्ध है। तब भ्रान्तिस्थल में मरुमरीचिका आदि से भी अर्थ की क्रियाकारिता होने लगेगी। इसी प्रकार सभी ज्ञान प्रमाण सिद्ध होकर समान हैं तो भ्रान्तिस्थल में पूर्व ज्ञान का उत्तरज्ञान से बाध नहीं होगा और ज्ञानों का परस्पर बाध्यबाधक भाव नहीं बन पायगा।

अलौकिकख्याति के सम्बन्ध में भट्टउम्वेक ने कहा है कि भ्रमस्थल में यदि लोकविलक्षणरूप से रजत भासित हो रहा है तो यह एक प्रकार से विपरीत ख्याति ही हुई।

स्मृतिप्रमोषख्याति एक प्रकार से प्राभाकर सम्मत अख्याति का ही नामान्तर कहा जायगा। यतः स्मृतिप्रमोष का अर्थ प्रमुष्टतत्ताक

स्मरण किया गया है। इसका भाव है भ्रमस्थल में शुक्तित्व का भूलना और रजतत्व प्रकारक रजत का स्मरण होना।

निर्विषयाख्याति का रूप नहीं बन पाता। यतः निर्विषय है तो ख्याति किस विषय की होगी? निर्विषयक, ज्ञान या भ्रम हो नहीं सकते।

इस प्रकार पूर्वोक्त १४ सभी ख्यातियों में कुछ न कुछ त्रुटि हैं। जिन त्रुटियों का सर्वमान्य समाधान नहीं बन पाता। वैसे तो ब्रह्म को छोड़ कर संसार की सभी वस्तुयें पारमार्थिक दृष्टि से सदोष हैं। व्यावहारिक दृष्टि से ही निर्दोष का विचार किया जाता है। इस प्रकार सभी ख्यातिवादों पर विचार करने पर अनिर्वचनीय ख्याति पक्ष में सम्भावित दोषों का मार्जन हो जाता है। भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय रजत आदि की उत्पत्ति मान लेने पर वाह्य पदार्थ का न होना, पदार्थ का असत् होना, एक समय में दो ज्ञान होना, प्रातिभासिक पदार्थ इन्द्रियसन्निकर्ष न होना, किसी भी पदार्थ में आंशिक सत्य और आंशिक असत्य मानना, भ्रम में भी यथार्थता मानना, सभी वस्तु को सत् और असत् मानना, अन्यथा शब्द का नया अर्थ करना तथा अनिर्वचीय का सदसद्विलक्षण नया अर्थ करना आदि सभो सम्भाव्य दोष निराकृत हो जाते हैं। आगमप्रमाण सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। वह आगम प्रमाण—न "रथा न रथयोगा"। (बृ० आ० उप० ४।३।१४) यह कहकर वस्तुओं की अनिर्वचनीय उत्पत्ति प्रमाणित कर रहा है। ऐसी स्थिति में भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय रजतादि की उत्पत्ति मानने में जो कुछ दोष उद्भावित किये जाते हैं, वे आगम से निरस्त हो जाते हैं। अन्य सभी आचार्यों के वाद प्रायः तर्क पर आधृत हैं। केवल आचार्य शंकर का वाद आगम प्रमाण पर आधृत होकर औपनिषद हो गया है। अतः विभ्रमों में अनिर्वचनीय ख्याति या अनिर्वचनोय विभ्रम सर्वथा निर्दुष्ट तथा श्लाघ्य है।

इतिशम्।